अप्रैल–जून, 2022

उन्नत कृषि

आज़ादी का अमृत महोत्सव

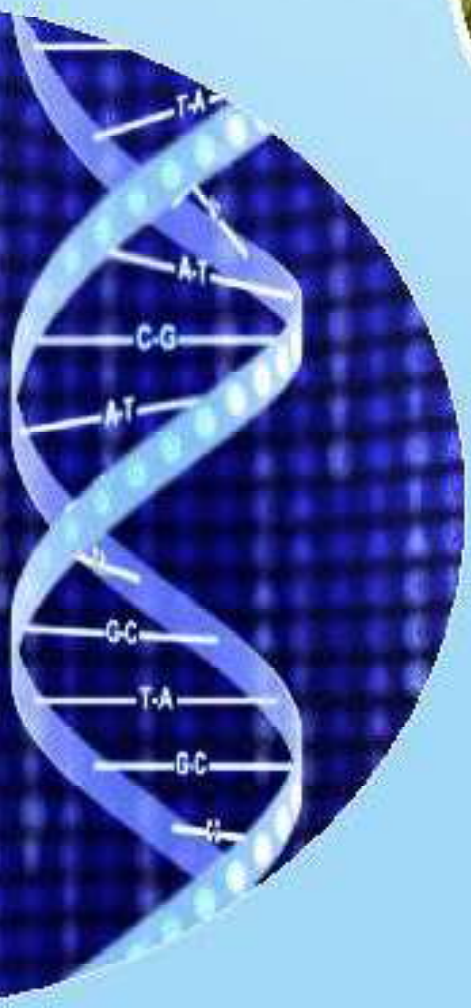

भारत सरकार
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय
कृषि एवं किसान कल्याण विभाग
विस्तार निदेशालय

संपादकीय

भारत सरकार द्वारा बजट घोषणा 2022 में कृषि के क्षेत्र में "प्राकृतिक खेती" पर विशेष बल दिया गया है। रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशी, रोगनाशी एवं खरपतवारनाशी रसायनों का अंधाधुंध उपयोग फसलोत्पादन में किया जा रहा है। इन रसायनों का उपयोग कई तरह से मानव तथा मृदा स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। आज की आवश्यकता है कि मृदा स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए ऐसी कृषि पद्धति को अपनाया जाए जिससे उत्पादन में सततता को बनाये रखते हुए फसल उत्पादन की लागत में भी कमी लाई जा सके। इस दिशा में वर्ष 2015–16 से "परम्परागत् कृषि विकास योजना" और "उत्तर पूर्वी क्षेत्र के लिए जैविक मूल्य श्रृंखला विकास मिशन" के अन्तर्गत रसायन मुक्त जैविक खेती को बढ़ावा दिया गया। इसी का परिणाम है कि भारत में जैविक खेती के उत्पादन, प्रमाणीकरण और विपणन नेटवर्क को विशेष बढ़ावा मिला है। भारत में जैविक खेती का क्षेत्रफल विश्व में पांचवे स्थान पर पहुंच गया है और जैविक खेती करने वाले किसानों की संख्या में भी वृद्वि हुई है।

"प्राकृतिक खेती" की शुरूआत वर्ष 2020 में "भारतीय प्राकृतिक कृषि पद्धति" के अन्तर्गत गोवंश मूत्र, गोबर, वनस्पति अवशिष्ट आदि के साथ पलवार तथा फसल चक्र आदि पद्धतियों को अपनाकर फसल उत्पादन लागत को कम करने व मृदा उर्वरता, पारिस्थितिकी तथा खेती को यथावत रखने के लिए की गई।

सरकार की मंशा है कि इस सतत प्राकृतिक खेती से लागत में कटौती के साथ–साथ किसानों की आय बढ़े तथा संसाधनों का संरक्षण, स्वस्थ मृदा, जल तथा पर्यावरण आदि सुनिश्चित हो। कृषि संसाधनों के पूर्ण उपयोग के साथ माननीय प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में देशी गोवंश आधारित आदानों से "प्राकृतिक खेती" को बढ़ावा देने को कहा है। मान्नीय प्रधानमंत्री ने प्री वाइब्रेन्ट गुजरात के संबोधन में भी "प्राकृतिक खेती" के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद को इसके वैज्ञानिक परक अध्ययन व पद्धति को स्थापित करने के साथ जन आन्दोलन के रूप में क्रियान्वित करने के लिए कहा है।

"प्राकृतिक खेती" के संवर्द्धन से सतत कृषि के उन्नयन, प्राकृतिक संसाधन के संरक्षण व पुर्नोद्धार, गोवंश क्षमता के सदुपयोग के साथ रासायनिक उर्वरकों की खपत में धीरे–धीरे आने वाली कमी से राजकीय कोष से इन पर मिलने वाली छूट में भी कमी आयेगी।

भारत सरकार ने "प्राकृतिक खेती" को व्यापक रूप से अपनाने के लिए वृहद कार्य योजना के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, झारखण्ड, बिहार व पश्चिम बंगाल में गंगा नदी के किनारे के 5 किलोमीटर क्षेत्र को इसके दायरे में लाने का प्रयास किया है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने "प्राकृतिक खेती" से संबंधित सामग्री को स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के शिक्षण पाठयक्रमों में शामिल करने के लिए समिति का गठन किया है। इतना ही नहीं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने हाल ही में रसायन मुक्त "प्राकृतिक खेती" को समर्पित पाठ्यक्रम को भी अधिसूचित किया है। इस विषय की सामयिकता को ध्यान में रखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने "प्राकृतिक खेती" से संबंधित कई अनुसंधान व शोधपरक विषयों को सम्मिलित करने के लिए राज्य कृषि विश्वविद्यालयों को निर्देश दिये हैं।

नये संकल्प में सुनहरे, स्वस्थ, खुशहाल व आत्मनिर्भर भारत का भविष्य छिपा है। हम सभी इस संकल्प को साकार करने के लिए आगे आयें और रचनात्मक व सृजनात्मक सहयोग देकर आत्मनिर्भरता के लिए बढ़ते भारत के कदम को गति व दिशा दें।

आत्मनिर्भरता के लिए जागें,
देश बढ़ेगा आगे।

सुधीर

(सुधीर कुमार)
संयुक्त निदेशक (कृषि सूचना)

उन्नत कृषि

वर्ष 55 | अंक 2 | अप्रैल – जून 2022

विषय सूची

आत्मनिर्भरता के संकल्प में बागवानी फसलों की महत्ता 4
डॉ. डी. के. सरोलिया एवं बी.डी. शर्मा

क्रिस्पर क्रान्ति : कृषि और खाद्य उद्योग के लिए वरदान 11
आनन्दी कर्ण, शालू ठाकुर, सुधीर कुमार, नीतू कुशवाहा, अपूर्वा गुप्ता, रवि रंजन सिंह, शिव सेवक एवं आलोक दास

कैसे लें मौसम की विपरीत परिस्थितियों में अधिक उत्पादन 15
डॉ नीशू जोशी, डॉ सौरभ जोशी, डॉ दिनेश जीनगर एवं डॉ एकता जोशी

पीबीडब्ल्यू 1 चपातीः उत्कृष्ट मिलिंग और बेकिंग गुणवत्ता वाली गेहूं की किस्म 18
अचला शर्मा, जी.एस. मावी, पूजा श्रीवास्तवा, सतिंदर सिंह, वी.एस.सोहू, महेश कुमार एवं अमरजीत कौर

दुधारू पशुओं के लिए पौष्टिक आहारः अजोला 21
विकास कुमार, मोती लाल मीणा, मधु सुदन कुण्डु एवं पुष्पा सिंह

पशु में ब्याने के बाद जेर का समय से न गिरनाः उपाय एवं समाधान 25
डॉ राम निवास ढाका, डॉ चारू शर्मा एवं डॉ के जी व्यास

साइलेज : व्यावसायिक पशुपालन हेतु पशु आहार 26
राजेश कुमार मीना, फूलसिंह हिण्डोरिया, राकेश कुमार, हरदेव राम, दिनेश कुमार एवं शुभ्रदीप भट्टाचार्य

नीली क्रांति में नई लहर : बायोफ्लॉक मत्स्य पालन 31
डॉ. एस. सासमल एवं डॉ. गौमत राय

संपादकीय मंडल

डा. वाई. आर. मीना
अपर आयुक्त (विस्तार)

डा. शैलेश कुमार मिश्र
निदेशक (कृषि सूचना)

सुधीर कुमार
संयुक्त निदेशक (कृषि सूचना)

डा. संजय कुमार जोशी
सहायक संपादक

कला पक्ष

एस. एस. नेगी
मुख्य कलाकार

सुचित्रा राय
वरिष्ठ कलाकार

पत्र व्यवहार का पता

संयुक्त निदेशक (कृषि सूचना)
उन्नत कृषि
विस्तार निदेशालय
कृषि एवं किसान कल्याण विभाग
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार
कृषि विस्तार सदन, पूसा, नई दिल्ली–110012
ईमेलः editor.intensive@gmail.com

पत्रिका में दिये गए विचार विस्तार निदेशालय, कृषि एवं किसान कल्याण विभाग, भारत सरकार के नहीं अपितु लेखकों के हैं।

आत्मनिर्भरता के संकल्प में बागवानी फसलों की महत्ता

डॉ. डी. के. सरोलिया, प्रधान वैज्ञानिक (बागवानी) एवं बी.डी. शर्मा, निदेशक

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद – केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर (राज.)

खेती–बाड़ी में सतत्ता आज इक्कीसवीं सदी की आवश्यकता है। वर्तमान में बागवानी फसलों की पोषण, आजीविका, उत्पादन, आमदनी, रोजगार, सक्षमता के कारण खपत व मांग बढ़ी है जिसके फलस्वरूप इन फसलों का उत्पादन खाद्यान्न फसलों से अधिक हो रहा है। नये संकल्पों को साकार करने के लिए सामूहिक रूप से सरकार, निवेशक, कृषक, वैज्ञानिक आदि अपने–अपने तरीकों से प्रयासरत हैं। इन्हीं के परिप्रेक्ष्य में नवोन्मेषी बागवानी प्रौद्योगिकी, भण्डारण गृह, पॉली हाउस, खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना, डिजिटल क्रांति आदि की दिशा में सराहनीय प्रयास किये जा रहे हैं।

उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजी मिशनरियों द्वारा पश्चिम हिमालय के चयनित क्षेत्रों में शीतोष्ण फसलों सेब, नाशपाती, आड़ू, खुबानी, अखरोट, गांठगोभी, ब्रुसेल्स स्प्राउट आदि का उपस्थापन किया गया। वहीं मैदानी भागों में लीची, लोकाट, माल्टा, किन्नू, ग्रेप फ्रूट इत्यादि को प्रोत्साहन दिया गया। यद्धपि इन वर्षों में बागवानी सत्ताधारी राजाओं, सामंतों, विदेशी शासकों के निजी उद्यानों/बागों तक सीमित रही । इसके व्यावसायिक स्तर पर विकास हेतु विशेष ध्यान आजादी के बाद चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में दिया गया। इससे पूर्व भारत में अनाज की कमी होने के कारण अनाज उत्पादन हेतु ही विशेष ध्यान दिया गया और "हरित क्रांति" के कारण इसके उत्पादन में देश को आत्मनिर्भरता प्राप्त हुई।

स्वतंत्रता के बाद द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत सन् 1957–58 में देश के विभिन्न क्षेत्रों में आठ क्षेत्रीय शोध केन्द्रों की स्थापना की गयी, वहीं भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली से उद्यान विज्ञान विभाग आरम्भ किया। इनका उद्देश्य बागवानी की विभिन्न विधाओं का शिक्षण तथा शोध कराना था। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में बागवानी पर ढांचागत विश्वस्तरीय सुविधायें सुलभ करवाने, नये संस्थान खोलने जैसे प्रयास रहे तथा कृषि से बागवानी फसलों की ओर बढ़ने की दिशा में यह एक मील का पत्थर साबित हुआ। इन फसलों के उत्पादन में भारत ने अभूतपूर्व प्रगति की है। इस समय विश्व पटल में हम अग्रणी राष्ट्रों के साथ खड़े हैं। वर्तमान में देश के कुल कृषि के सकल घरेलू उत्पाद में बागवानी फसलों की भागीदारी 30 प्रतिशत से अधिक है जो कुल फसल क्षेत्रफल की मात्र 14 प्रतिशत से कम भू–भाग से ली जा रही है। बागवानी फसलों (फल–फूल, सब्जी, रोपण, औषधीय, सुगंधीय, मसाले, आदि) में लगभग 90 प्रतिशत हिस्सेदारी फल व सब्जी फसलों की है जो

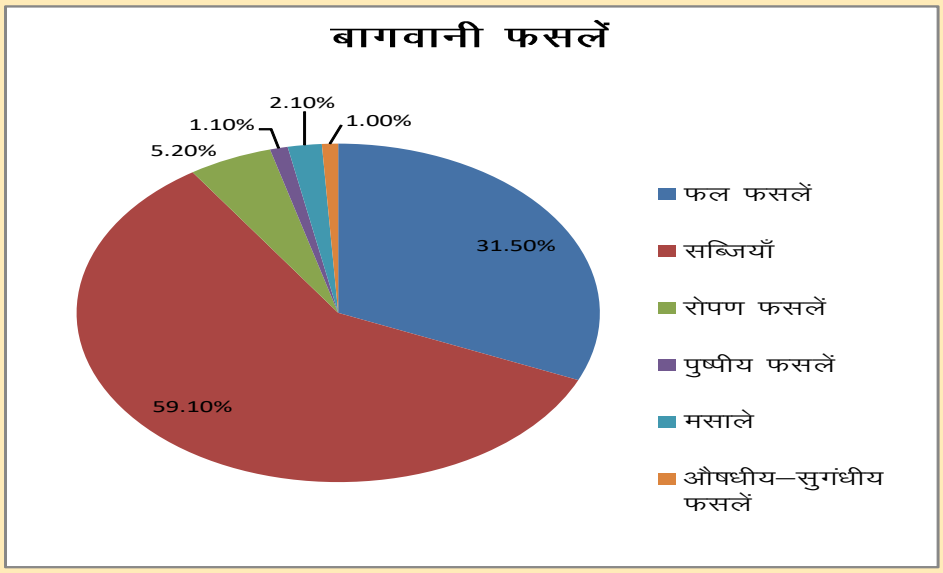

विभिन्न बागवानी फसलों की प्रतिशत भागीदारी

के सामूहिक प्रयासों का परिणाम है। विगत डेढ़ दशकों में बागवानी व उसकी मुख्य घटक फसलों क्रमशः फल व सब्जियों के उत्पादन बताते हैं कि इन फसलों की खपत बढ़ने से मांग भी बढ़ी है। इस बढ़ती मांग को देखते हुए कुल बागवानी फसलों का उत्पादन स्तर 326.58 मि. टन तक पहुँच गया है, उसे आगे बढ़ाने का संकल्प लेना है। यह इन फसलों के क्रमोन्त विकास व सम्भावनाओं को परिलक्षित करता है।

परम्परागत फसलों की तुलना में अधिक आमदनी, पोषणता व आजीविका सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम हैं तथा जो आत्मनिर्भर भारत की विकास यात्रा को गति देने में महती भूमिका निभा सकती है।

भारत विश्व में इन फसलों (फल व सब्जी) के उत्पादन का दूसरा बड़ा राष्ट्र है साथ ही कुछ बागवानी फसलों जैसे आम, केला, पपीता, काजू, सुपारी, काली मिर्च, आलू, भिंडी, आदि में प्रथम स्थान रखता है।

बागवानी फसलों का सतत् क्षेत्रफल बढ़ा है, जिससे उत्पादन स्तर में बढ़ोत्तरी हुई है। उदाहरण स्वरूप 2002–03 वर्ष में कुल बागवानी फसलों का उत्पादन 150 मि. टन था, जो आज 300 मि. टन के पार पंहुच गया है। यह सब किसानों, वैज्ञानिकों व सरकार

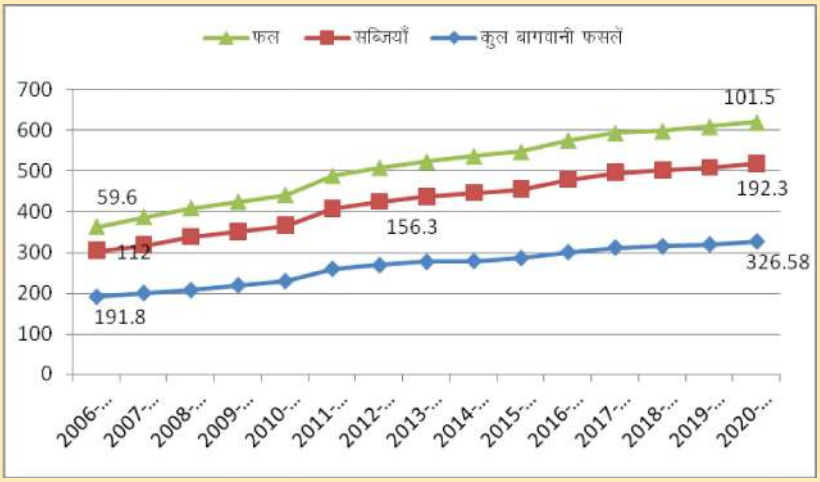

मुख्य बागवानी फसलों का उत्पादन

आत्मनिर्भरता के संकल्प में मुख्य चुनौतियां : कोरोना काल में यह सारे विश्व के सामने प्रत्यक्ष सिद्ध भी हो गया कि आत्मनिर्भर भारत मानवता को महामारी के संकट से बाहर निकालने में वैक्सीन निर्माण व कृषि उत्पादन जैसे विषयों में सक्षम है। परन्तु तेजी से बदल रहे समय के दौर में संकल्प से सिद्धि हेतु चुनौतियों से निपटने की आवश्यकता है, जो निम्नलिखित है:

- जलवायु परिवर्तन व जनसंख्या वृद्धि
- मृदा उर्वरता व उत्पादकता में कमी
- सूखा, गर्मी व लवणता की समस्याएं
- लागत व जोखिम की अधिकता
- डिजिटल तकनीक की जानकारी व जागरूकता में कमी
- खरपतवार व पौध संरक्षण समस्या
- भण्डारण व परिवहन की व्यवस्थाओं में कमियां

- सरकारी योजनाओं जैसे– न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारण व फसलें शामिल होने में विषमता

उपरोक्त वर्णित चुनौतियों का सीधा असर उत्पादन पर पड़ता है। आज किसानों को अत्याधुनिक खेती की तकनीकें बताई जा रही हैं, वहीं बागवानी के व्यवसायीकरण के प्रति जागरूक किया जा रहा है, जिसमें खेती में विविधीकरण, नर्सरी उद्यमिता विकास, पौध संरक्षण उपाय, किसान उत्पादक समूह, ई–विपणन व मैन्युफैक्चरिंग क्षेत्र में वोकल फॉर लोकल, मेक इन इण्डिया व डिजिटल जागरूकता पर बल दिया जा रहा है। हम अपने लक्ष्य तभी प्राप्त कर पायेंगे, जब साथ मिलकर चलेगें। जैसा ऋग्वेद के इस मंत्र से सीख मिलती है:– ''ऊँ संगच्छध्वं सवदध्वंसं वो मनांसि जानताम्'' अर्थात् हम सब एक साथ चलें, आपस में संवाद करे, हमारे मन एक हों। चुनौतियों को स्वीकार करते हुए इस आजादी की वर्षगांठ पर नये विचारों व ऊर्जा के साथ नये आयाम स्थापित करेंगे।

पोषण संकल्प में बागवानी फसलों की भूमिका : संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 2015–30 के लिए घोषित अपने सतत् विकास लक्ष्य में कुपोषण मुक्त विश्व व शून्य भुखमरी (जीरो हंगर) जैसे लक्ष्य निर्धारित किए हैं। इन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय अर्थव्यवस्था जो कृषि प्रधान कही जाती है, वास्तव में कृषि प्रधान बनकर दिखाएं। इनमें बागवानी फसलें महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं क्योंकि फल–सब्जियों का मानव आहार में महत्व सर्वविदित है। भारतीय औषधि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने संतुलित आहार में 280 ग्राम सब्जियाँ व 120 ग्राम फल प्रत्येक दिन प्रति व्यक्ति की संस्तुति की है। इनमें विद्यमान पोषक तत्व हमें स्वस्थ व उचित पोषण देने में सक्षम है। फल–सब्जियां विभिन्न रोगों से लड़ने की शक्ति प्रदान करते हैं, इसी कारण बागवानी की इन फसलों को संरक्षी खाद्य भी कहा गया है। रोजमर्रा की जिंदगी में चुस्त–दुरूस्त रहने से लेकर, बीमारी के बाद कमजोरी (कोरोना, डेंगू, चिकनगुनिया इत्यादि) से निवारण के लिए बागवानी फसलों जैसे फल, सब्जी, मसालें (हल्दी, अदरक), रोपण (नारियल पानी), औषध–सुगंधीय (तुलसी, गिलोय), आदि से मिलने वाला पोषण बहुत उपयोगी है। जिसमें पाये जाने वाले एन्टी ऑक्सीडेंटस तो कैंसर जैसी भयानक बीमारी की रोकथाम में भी सहायक होते हैं।

पोषण के साथ ही औषधीय महत्व के रूप में इन बागवानी फसलों को प्राचीनकाल से जाना जाता है। उदाहरण रूप में

क्र.सं.	पोषक तत्व	स्रोत
1	विटामिन –ए विटामिन –बी 1 विटामिन –बी 2 विटामिन –सी	आम, पपीता, पालक, गाजर बादाम, केला, सेब, मिर्च, सेम बेलपत्र, लीची, अनार, बैंगन, शलजम आँवला, अमरूद, बेर, नींबू वर्गीय फल, गोभी
2	**खनिज लवण** कैल्शियम फॉस्फोरस लोहा पोटैशियम आयोडीन	 बादाम, लीची, अंजीर, चौलाई, सहजन अनार, आड़ू, पपीता, लहसुन, मटर करौंदा, खजूर, दाख, पालक अनार, केला, चौलाई, पालक, करेला, मूली जामुन, केर, भिंडी, ग्वारफली
3	प्रोटीन	काजू, सीताफल, अखरोट, मटर, सेम,
4	कार्बोहाइड्रेट्स	केला, खजूर, किशमिश, बेल, आलू, शकरकन्द
5	वसा	अखरोट, एवोकैडो, बादाम
6	जल तत्व	तरबूज, खरबूजा, खीरा, ककड़ी
7	कार्बनिक अम्ल	सेब, अंगूर, जामुन, नींबू वर्गीय फल, मिर्च
8	रेशो की मात्रा	अमरूद, पपीता, चौलाई, पालक, आँवला, बेल

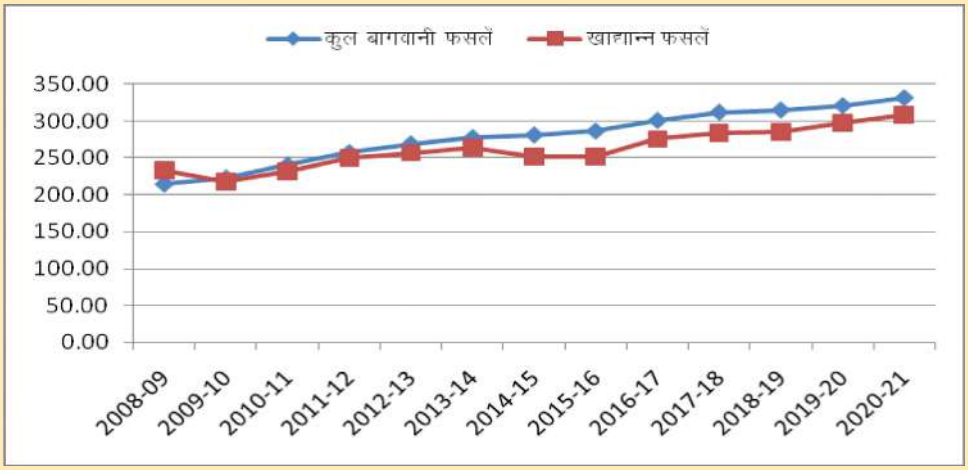

कुल बागवानी फसल व खाद्यान उत्पादन (मि. टन)

आर्थिक उन्नयन में बागवानी फसलों की भूमिका : भारतवर्ष में लगभग 250 मिलियन लोग खेती–बाड़ी से अपनी आजीविका चलाते हैं। यह क्षेत्र आज भी सर्वाधिक रोजगार सृजन करने वाला असंगठित क्षेत्र बना हुआ है। वर्तमान में देश के कुल कृषि के सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में बागवानी फसलों की भागीदारी 30 प्रतिशत से अधिक है जो कुल फसल क्षेत्रफल के मात्र 14 प्रतिशत से कम भू–भाग से ली जा रही है। विगत दशक में देखा गया कि बागवानी फसलों की घरेलू खपत में 2.3 प्रतिशत दर से बढ़ोत्तरी हो रही हैं वहीं खाद्यान्न फसलों की खपत 1.3 प्रतिशत दर से घट रही है जिससें बागवानी फसलों के अंतर्गत क्षेत्रफल 2.7 प्रतिशत दर से बढ़ा तथा उत्पादन 7 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रहा है। स्वतंत्रता के बाद हरित क्रांति के कारण खाद्यान फसलों के उत्पादन में प्रगति हुई, जिससे हम इन फसलों में आत्मनिर्भर हुए। अब हम पोषण सुरक्षा की ओर अग्रसर हैं। इसमें 'सुनहरी क्रांति' ने दस्तक दी है तथा इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए सरकार भी नित नये प्रयास कर रही है। परिणामस्वरूप 2012–13 से उद्यानिकी/बागवानी फसलों का उत्पादन खाद्यान फसलों से अधिक हो रहा है। ग्राफ से यह बात स्पष्ट होती है कि हम बागवानी फसलों के विकास की ओर कदम

च्यवनप्राश, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा व आँवला), हर्बल चाय, ईसबगोल भूसी, दशमूलारिष्ठ क्वाथ, तुलसी अर्क आदि।

संतुलित आहार के सभी अवयव जैसे कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण, विटामिन्स के साथ कार्बोनिक अम्ल (भूख बढ़ाने व पाचन क्रिया में सहायक) व रेशों की प्रचुरता से संपूर्ण पोषण इन फसलों का समावेश करके ही होता है।

गाँवों में जहाँ पोषण को नजरअंदाज करते हैं, वहीं रतौंधी, बेरी–बेरी, पेलेग्रा, स्कर्वी, घेंघा, क्वाशियोरकोर, एनीमिया, बाँझपन, आदि रोग होने की संभावना अधिक होती हैं। समाज की कड़ी परिवार व एक स्वस्थ मनुष्य ही स्वस्थ देश के निर्माण में योगदान दे सकता है। कुपोषण व भुखमरी भी तभी मिटेगी जब भरपेट संतुलित भोजन मिलेगा। इसके लिए किसान, वैज्ञानिक, सरकार सभी एकजुट होकर प्रयत्न कर 'उन्नत स्वास्थ्य' का संकल्प लें और सिद्धि हेतु प्रयत्नशील रहें।

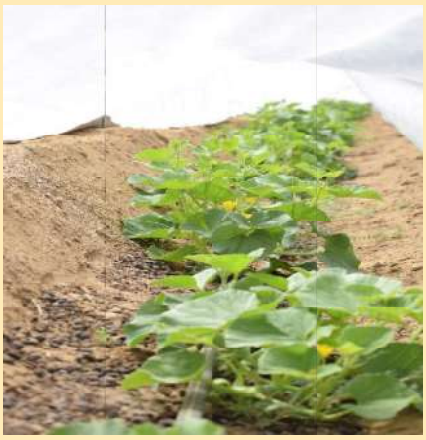

लो टनल में ककड़ी की अगेती खेती

उन्नत बीजोत्पादन स्नेपमेलन (फूट–ककड़ी) खेत एवं फसल

संरक्षित खेती में जूकनी, चैरी, टमाटर

बढ़ा चुके हैं।

आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाने में बागवानी नगदी फसलें अधिक लाभदायक व्यवसाय बनती जा रही हैं। किसानों की आय बढ़ाने का लक्ष्य बिना बागवानी फसलों को समावेशित किये संभव नहीं है। साथ ही साथ त्रिस्तरीय क्षेत्रों में कार्य व योजनाबद्ध रणनीति से आय का उन्नयन संभव होगा, जो उत्पादकता बढ़ाने के आयामों के साथ उत्पादन लागत एवं खेती–बाड़ी जोखिम को कम करने से संभव हो

गुलदाउदी व रजनीगंधा की खेती

पायेगा। नये क्षेत्रों में अपार संभावनाएं हैं केवल निश्चित आय सृजन हेतु 'आउट ऑफ बॉक्स' क्रियान्वयन की आवश्यकता है जो निम्न हो सकते हैः–

1. बेमौसमी सब्जियों की खेती : संरक्षित वातावरण या अगेती किस्मों का समावेशन कर अधिक आय संभव है। जैसे

खरीफ प्याज एवं लो टनल में खीरा वर्गीय सब्जियों की खेती।

2. सब्जियों का बीज उत्पादन : प्रशिक्षित युवा कृषक क्षेत्रीय बागवानी फसलों विशेषतः सब्जी बीज उत्पादन को व्यवसाय के रूप में अपनाकर अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं।

3. विदेशी सब्जियों की खेती : हमारे देश की जलवायु विभिन्न विदेशी बागवानी फसलों की पैदावार के लिए भी अनुकूल है। अतः कुछ शीतकालीन विदेशी सब्जियों की फसल भी सफलतापूर्वक उगायी जा सकती हैं, जैसे ब्रोकली, ब्रुसेल्स स्प्राउट, चाइनीज कैबेज, लीक, पार्सले, सेलरी, लैटूस, चैरी टमाटर, रेड कैबेज, एस्पेरागस, आदि। इनकी मांग बड़े शहरों के होटलों और पर्यटक स्थलों पर अधिक है तथा इनकी खेती किसान की अतिरिक्त आय का उत्तम स्त्रोत बन सकती है।

4. फसल विविधिकरण व पुष्प फसलों की खेती : फसल विविधिकरण के द्वारा खेती के जोखिम को कम करने व आय सृजन हेतु बदलते जलवायु परिदृश्य में इसकी आवश्यकता है। बागवानी फसलों में फूलों की खेती शहरों के आस–पास के क्षेत्रों में आय का अच्छा माध्यम बन सकती है।

5. सम्पोषणीय जैविक खेती : कुछ जागरूक उपभोक्ता अपने स्वास्थ की चिंता करते हुए सुरक्षित सब्जियों को ऊँचे दामों में खरीदते हैं। बदलते परिवेश व प्रदूषण में रसायनों के अवैज्ञानिक प्रयोग से मानव स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ा है। वैश्विक स्तर पर जैविक खाद्य पदार्थों की निरंतर माँग इसी कारण बढ़ी है तथा बागवानी फसलों की जैविक खेती को बढ़ावा मिला है।

विभिन्न उद्यानिकी फसलों की मधुमक्खी द्वारा परागण पर निर्भरता

क्र.सं.	फसल का नाम	प्रतिशत निर्भरता
1	आम	90
2	कद्दूवर्गीय फसलें	70
3	नींबूवर्गीय फसलें	30
4	मटर	50
5	बेर	90
6	अंगूर	60
7	पपीता	60
8	बैंगन	33

6. ई–खेती : संचार क्रांति से सूचनाएं व जानकारियाँ किसान घर बैठे समय पर प्राप्त कर सकते हैं जो उनके सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। मौसम की जानकारी, फसल बुवाई, पौध संरक्षण उपाय, मधुमक्खी पालन, मण्डी भाव की जानकारी के साथ सभी उत्पादन करने वाले उत्पादक, उपभोक्ताओं से सीधे जुड़कर उन्हें आपूर्ति कर सकते हैं, इसे 'खाद्य सहभागिता व क्राउड फार्मिंग' कहा गया है।

7. नैनो व ड्रोन तकनीक : दोनों ही तकनीकियाँ सटीक खेती को प्रोत्साहन देंगी जो पूर्णतः सेंसर आधारित नवीन प्रौद्योगिकियां हैं। इनसे कम लागत, फसल माँग के अनुसार रसायन, उर्वरक, कीटनाशकों के उपयोग एवं सिंचाई अवस्थाओं पर कम पानी से अधिकाधिक उत्पादन संभव हो पायेगा।

8. खाद्य प्रसंस्करण के नये आयाम : बागवानी फसलों के शीघ्र खराब होने से उनके परिवहन के दौरान कम से कम क्षति हो उस हेतु, सेलाक कोटिंग तकनीक अपनाकर आय बढ़ा सकते हैं।

9. अन्य क्षेत्र : गुणवत्तायुक्त शहद उत्पादन और उससे किसानों को होने वाली आमदनी के साथ–साथ फसल उत्पादन के अन्य लाभ भी होते हैं। तालिका में परिलक्षित होता है कि मौन पालन को उद्यानिकी फसलों के साथ अपनाने में अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है तथा फसल उपज में भी 15–20 प्रतिशत की बढ़ोतरी सरलता से प्राप्त हो सकती है।

बागवानी के विकास हेतु सरकार द्वारा उठाये गये कदम : ढाँचागत विकास में 750 कृषि विज्ञान केन्द्र, सरकार और किसानों के मध्य सेतु का कार्य कर रहे हैं, जबकि अनुसंधान संस्थान व विश्वविद्यालय इन फसलों के उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाने का काम कर रहे हैं। यही उन्नति किसी भी राष्ट्र या समाज की प्रगति का

सूचक है। सरकारी तंत्र भी बागवानी के उन्नयन हेतु पूरा सहयोग दे रहे हैं। इस हेतु सरकार द्वारा उठाये गए अनेक कदम आत्मनिर्भर विकास लक्ष्य को गति देने में सहायक हैं जैसे–

- मृदा स्वास्थ्य कार्ड – 15 करोड़ किसान सीधे योजना से जुड़े।
- नीम कोटिंग वाले यूरिया को बढ़ाना –यूरिया की उपलब्धता बढ़ी।
- परम्परागत कृषि विकास योजना – जैविक कृषि को बल मिला।
- प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना – सिंचाई क्षेत्र बढ़ाया जा सका।
- ई–नाम योजना– विपणन क्षेत्र में व्यापक वृद्धि हुयी।
- फसल बीमा योजना – फसल सुरक्षा हेतु बीमा योजना से आपदाओं में किसानों को सीधा लाभ हुआ।
- ब्याज रियायत योजना – फसल ऋण पर छूट से कृषक समूह को लाभ हुआ।
- राष्ट्रीय कृषि विकास योजना – उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाने हेतु राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा बिल व तिलहन–तेल मिशन, आदि योजनाओं से किसानों को सीधा लाभ हुआ।
- बागवानी के समन्वित विकास मिशन – केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम 2014–15 से लागू किया गया जिसका उद्देश्य सम्पूर्ण बागवानी का विकास करना है इसमें पाँच स्कीमों को भी शामिल कर दिया गया है जो है, राष्ट्रीय बागवानी मिशन, पूर्वोत्तर हिमालयी राज्यों के लिए बागवानी मिशन, राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, नारियल विकास बोर्ड और केन्द्रीय संस्थान, नागालैण्ड।
- 'मेरा गाँव मेरा गौरव' – इस योजना में कृषक, शोध संस्थाओं से सीधे जुड़े तथा अनुसंधान परिणाम, प्रयोगशालाओं से सीधे खेतों में पंहुचे।
- किसान कॉल सेंटर – इसके द्वारा टोल फ्री नं. से समस्या निराकरण तथा डीडी किसान चैनल पूर्णतः कृषक एवं किसानी गतिविधियों पर समर्पित होने से कृषकों को नवीनतम तकनीकियों को अपनाने में सरलता हुई।

- किसान क्रेडिट कार्ड योजना – आर.बी.आई व नाबार्ड पोर्टल से सीधे खाते में लेन देन व समय पर ऋण उपलब्धता हुई।

वर्तमान परिपेक्ष्य में यदि दृष्टि डाली जाए तो पाएंगे कि हमारी 65 प्रतिशत आबादी 35 साल से कम उम्र की है जो अकल्पनीय बदलाव लाने की क्षमता रखती है। सरकार की इस असंगठित समूह को साधने की उल्लेखित योजनाओं व स्कीम से जोड़ने की कोशिश से ही आशातीत सफलता इस विकास के रूप में लक्षित हुई है। भारत में अखिल भारतीय वित्तीय समावेश सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी लोगों की मासिक आय का केवल 19–20 प्रतिशत भाग ही खेती–बाड़ी से आ रहा है, जबकि आमदनी में दिहाड़ी मजदूरी का हिस्सा 40 प्रतिशत से अधिक है। अर्थात कृषकों की आय की दृष्टि से खेती–बाड़ी घाटे का सौदा बनती जा रही है। इसमें सरकार किसान की आय 18 हजार प्रतिमाह (न्यूनतम मजदूरी के बराबर) तक बढ़ा पाती है तो इस क्षेत्र में छाए निराशा के बादल छटने लगेंगे व गाँवों से शहरों की ओर पलायन पर भी अंकुश लगेगा। इस दिशा में सामूहिक प्रयासों में वैज्ञानिकों द्वारा फसलों की उन्नत किस्म व संबंधित तकनीकियों का विकास, किसानों का परिश्रम, निवेशकों का रूझान व सरकार द्वारा नवीन प्रौद्योगिकियों में निवेश प्राथमिकता से करने पर विकास को द्रुतगति मिलेगी। यही सही मायनों में आत्मनिर्भरता होगी।

क्रिस्पर क्रान्ति : कृषि और खाद्य उद्योग के लिए वरदान

आनन्दी कर्ण, शालू ठाकुर, सुधीर कुमार, नीतू कुशवाहा,

अपूर्वा गुप्ता, रवि रंजन सिंह, शिव सेवक एवं आलोक दास

पादप जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–
भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर –208024

आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है, यह बात हम सभी ने अपने जीवन में एक बार जरूर सुनी होगी। वर्तमान शताब्दी की प्रमुख विशेषताओं में प्रथम विज्ञान की प्रगति और द्वितीय हमारे जीवन के लगभग हर एक पहलू पर इसका प्रभाव है। विज्ञान के हालिया चमत्कारों में आनुवंशिक कैंची के रूप में क्रिस्पर/ कैस–9(CRISPR/ Cas-9) जैव प्रौद्योगिकी उपकरण का आविष्कार है। आनुवंशिक सामग्री डीएनए/आरएनए (DNA/RNA) कोशिका में संसाधित प्रत्येक सूचना का खाका (ब्लूप्रिन्ट) रखती है। यह एक शक्तिशाली जीन–सम्पादन उपकरण है जो वैज्ञानिकों को सभी जीवों के आनुवंशिक मेकअप तक अभूतपूर्व पहुंच प्रदान करता है।

क्रिस्पर का सम्पूर्ण नाम ''क्लस्टर्ड रेगुलेरली इंटरस्पेस्ड शॉट पैलिंड्रोमिक रिपीट्स'' है तथा यह बैक्टीरिया में वायरस से लड़ने के लिए एक अनुकूल प्रतिरक्षा प्रणाली प्रदान करते हैं। वायरस के संक्रमण के बाद जीवित रहने वाले बैक्टीरिया, संक्रमण की स्मृति के रूप में वायरस के आनुवंशिक कोड के एक टुकड़े को अपने जीनोम में जोड़ देते हैं। कैस–9 एक प्रोटीन है जो क्रिस्पर (आरएनए) के द्वारा सम्बन्धित आनुवंशिक बदलाव प्रदान करता है।

पृष्ठभूमि

आनुवंशिक सामग्री डीएनए (डीऑक्सी राइबोन्यूक्लिक एसिड) डबल हेलिक्स और आनुवंशिक कोड की खोज के बाद, वैज्ञानिक कृत्रिम रूप से डीएनए अनुक्रमों में बदलाव करने में रूचि रखते थे। जीव विज्ञानी और आनुवंशिकीविद हमेशा आनुवंशिक रोगों का इलाज करने, कृषि उत्पादों में सुधार लाने और आनुवंशिक अनुसंधान की सीमाओं को आगे बढ़ाने का सपना देखते थे। 1970 और 80 के दशक में रिसट्रिक्सन एंजाइम (डीएनए काटने वाला प्रोटीन) और डीएनए अनुक्रमण विधियों की खोज के साथ, डीएनए के संपादन का विचार संभव हो गया परन्तु तीन दशकों से रिस्ट्रिक्सन एंजाइमों की खोज के बाद भी, जीनोम जो अरबों न्यूक्लियोटाइड से बना होता है के भीतर सटीक परिवर्तन करना महंगा, समय लेने वाला एवं श्रम–गहन प्रयास था, वर्ष 2012 में क्रिस्पर तकनीक की खोज के बाद ये सभी मुद्दे बदल गए।

2011 में, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के जीवविज्ञानी डा0 जेनिफर डौडना और उमिया विश्वविद्यालय के जीवविज्ञानी डा0 इमैनुएल चारपेंटियर, प्यूर्टो रिको एक सम्मेलन में मिले। उस समय

डा0 चार्पेंटियर स्ट्रेप्टोकोकस पाइरोजेनस नामक बैक्टीरिया पर काम कर रही थी और उन्होनें टीआरएसीआर (जतंबत, बैक्टीरिया की प्रतिरक्षा प्रणाली का हिस्सा) नामक एक अणु की खोज की और डा0 डौडना आरएनए एंजाइमों के जैविक कार्यों पर काम कर रही थी,उन्होंने बैक्टीरिया में आरएनए–आधारित निगरानी प्रणाली की खोज की थी। 2011 में उनकी मुलाकात ''एक अनूठा पल'' था, और उन्होंने आरएनए–आधारित जीन संपादन प्रणाली विकसित करने के लिए संयुक्त रूप से काम करने का फैसला किया। 2012 में उन्होंने बैक्टीरिया की कैंची को फिर से बनाने का सफल प्रयास किया। उन्होंने यह साबित किया कि वे अब इन कैंची का प्रयोग कर किसी भी डीएनए अणों को वांछित स्थलों को काट सकते हैं। इस खोज के तुरन्त बाद, विभिन्न क्षेत्रों में इसका व्यापक उपयोग शुरू हो गया।

नोबेल पुरस्कार

क्रिस्पर ने 2020 तक विज्ञान उद्योग में इतना उत्तेजक प्रभाव डाला कि खोज के ठीक 8 साल बाद, अमेरिका की डा0 जेनिफर डौडना और फ्रांस की डा0 इमैनुएल चारपेंटियर ने रसायन विज्ञान में 2020 का नोबेल पुरस्कार जीता। यह पहली एकमात्र महिला समूह थी जो नोबेल पुरस्कार विजेता थी। अतीत में मैरी क्यूरी 1911 में रेडियम और पोलोनियम तत्वों की खोज के बाद रसायन विज्ञान में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित होने वाली पहली महिला थीं। नोबेल जूरी के सदस्यों को क्रिस्पर और मानव कल्याण के लिए इसके विविध अनुप्रयोग से बहुत उम्मीद है।

क्रिस्पर/कैस–9 कैसे काम करता है

जैसा कि नाम से पता चलता है कि क्लस्टर नियमित रूप से छोटे पैलिंड्रोमिक अनुक्रमों को काटते हैं, इसमें छोटे डीएनए दोहराव होते हैं जिन्हें स्पेसर कहा जाता है। ये स्पेसर वायरस के डीएनए से प्राप्त होते हैं जिन्होंने अतीत में मेजबान जीवाणु पर हमला किया है। इसलिए, स्पेसर्स पिछले संक्रमणों की 'आनुवंशिक स्मृति' के रूप में कार्य करते हैं। यदि भविष्य में वह वायरस या बैक्टीरियोफेज (वायरस खाने वाले बैक्टीरिया) फिर से हमला करता है जो तो जीवाणु की रक्षा प्रणाली उस वायरस को स्पेसर के माध्यम से पहचान लेती है एवं कैस–9 जो कि आनुवंशिक कैंची की तरह काम करता है वायरस डीएनए अनुक्रम को काटकर नष्ट कर देती है। एक सटीक स्थान और इस प्रकार जीवाणु को आगे के वायरल हमले से बचाते हैं। यदि कोई नया वायरस हमला करता है, तो एक नया स्पेसर बनाया जाता है और स्पेसर्स की श्रृंखला में शामिल किया जाता है और वही तंत्र शुरू होता है, ताकि वे भविष्य में दुश्मन को पहचान सकें।

क्रिस्पर प्रतिरक्षा तंत्र तीन बुनियादी चरणों के माध्यम से बैक्टीरिया को विभिन्न वायरल हमलों से बचाने का काम करता है।

(चरण 1) अनुकूल – आक्रमण करने वाले वायरस के डीएनए को छोटे खंडों में संसाधित किया जाता है जिन्हें क्रिस्पर अनुक्रम में नए स्पेसर के रूप में डाला जाता है।

(चरण 2) क्रिस्पर आरएनए का उत्पादन – क्रिस्पर दोहराता है और जीवाणु डीएनए में स्पेसर्स ट्रांसक्रिप्शन (डीएनए – एमआरएनए) से गुजरते हैं। आरएनए एक एकल फंसे हुए अणु है। इस आरएनए श्रंखला को छोटे टुकड़ों में काटा जाता है जिसे क्रिस्पर आरएनए कहा जाता है।

(चरण 3) लक्ष्यीकरण – क्रिस्पर वायरल सामग्री को नष्ट करने के लिए जीवाणु मशीनरी का मार्गदर्शन करते है, क्योंकि क्रिस्पर अनुक्रम अनुकूलन (चरण –1) के दौरान प्राप्त वायरल डीएनए अनुक्रमों से कॉपी किए जाते हैं, वे वायरल जीनोम से सटीक मेल खाते हैं। इस प्रकार उत्कश्ष्ट मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते हैं।

हमलावर वायरस (बैक्टीरियोफेज) को पहचानने और नष्ट करने में क्रिस्पर आधारित प्रतिरक्षा की विशिष्टता केवल बैक्टीरिया के लिए उपयोगी नहीं है। इसका उपयोग बुनियादी अनुसंधान और चिकित्सा जैसे विविध विषयों में किया जा रहा हैं। क्रिस्पर का एक हालिया संस्करण जिसे ''बेस एडिटर्स'' के रूप में जाना जाता है, वह बिना काटे जीन को संपादित करने में सक्षम हैं। बेस एडिटर्स, कैंची की तुलना में एक पेंसिल की तरह अधिक होते हैं, वे एक समय में एक आधार (डीएनए संरचना में ए,टी,जी, या सी नाइट्रोजनस बेस) के संपादन पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

अब, हमारे मन में एक सवाल जरूर उठना चाहिए– कैस–9 बैक्टीरिया में क्रिस्पर क्षेत्र पर हमला क्यों नहीं करता है? इसके पीछे का कारण बैक्टीरिया में अंतर्निहित सुरक्षा तंत्र है, जो यह सुनिश्चित करता है कि कैस –9 कहीं भी कट न जाए। पीएएम (प्रोटोस्पेसर

आसन्न रूपांकनों) के रूप में जाना जाने वाला छोटा डीएनए अनुक्रम है, वे टैग के रूप में कार्य करते हैं और डीएनए अनुक्रम को लक्षित करने के लिए आसन्न बैठते हैं और यदि कैस –9 कॉम्प्लेक्स पीएएम को लक्ष्य डीएनए में नहीं पहचान सकता है तो यह इसे बदल नहीं पाएगा।

अनुप्रयोग

क्रिस्पर/कैस –9 की खोज ने हमारे जीनोम एडिटिंग टूलबॉक्स में क्रान्ति ला दी है और यह सबसे नया लैब टूल बन गया है इसमें अपार संभावनाएं और व्यापक अनुप्रयोग हैं। यह उपकरण किसी भी पौधे में लगभग किसी भी जीन को जल्दी और कुशलता से बदल सकता है। कुछ वैज्ञानिकों ने क्रिस्पर को कम्प्यूटर के माउस के रूप में समझाया है। यह जीनोम में कहीं भी इंगित कर सकता है और यह उस स्थान पर बड़ी सटीकता के साथ कोई भी वांछनीय परिवर्तन कर सकता है।

खाद्य उद्योग में क्रिस्पर की भूमिका

पहली बार 2008 में रॉडॉल्फे बररंगौ और एक खाद्य सामग्री कंपनी डैनिस्को के शोधकर्ताओं की एक टीम द्वारा इसका उपयोग किया गया था। उस कंपनी को बैक्टीरियोफेज के कारण अपने दूध आधारित उत्पादों में समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। उन्होने स्ट्रेप्टोकोकस थर्मोफिलस बैक्टीरिया पर काम किया जो आमतौर पर दही और अन्य डेयरी उत्पादों में पाए जाते हैं उन्होने देखा कि वायरस के हमले के बाद, क्रिस्पर क्षेत्र में नए स्पेसर शामिल किए गए थे। इसके अलावा, उन्होंने पाया कि इन स्पेसरों का डीएनए अनुक्रम वायरल जीनोम के समान था। बाद में उन्होंने स्पेसर्स में भी बदलाव किया और इस तरह वे वायरस के खिलाफ बैक्टीरिया की प्रतिरोधक क्षमता में सुधार करने में सक्षम हुए। कई खाद्य निर्माता अब पनीर और दही का उत्पादन करने के लिए क्रिस्पर तकनीक का उपयोग करते है। यह क्रिस्पर के औद्योगिक उपयोग का समर्थन करता है।

कृषि में क्रिस्पर की भूमिका

कृषि में उभरती चुनौतियों का शीघ्रता से समाधान करने के लिए क्रिस्पर/ कैस–9 आधारित जैव प्रौद्योगिकी उपकरण बहुत आशाजनक है। यह पौधों में वांछित लक्षण प्राप्त करने में बहुत प्रभावी है। यह जलवायु परिवर्तन से होने वाले हानिकारक प्रभावों का प्रतिकार करने और बढ़ती आबादी की भविष्य की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए बहुत ही उपयोगी तकनीक है। इस तकनीक से गैर–ट्रान्सजेनिक आनुवंशिकी रूप से संशोधित फसलों को विकसित कर सकते हैं।

बेहतर पोषण, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने और सूखे के प्रति बेहतर सहनशीलता के लिए रूचि के विभिन्न जीनों को लक्षित करके शोधकर्ता कई कृषि पौधों की प्रजातियों में क्रिस्पर/ कैश –9 का उपयोग कर रहे हैं। इस प्रणाली का उपयोग फसलों में उपज, पौधों की बनावट और रोग सहनशीलता जैसे लक्षणों में सुधार के लिए किया जा रहा है।

युपेंग काई के नेतश्त्व में चीनी कृषि विज्ञान अकादमी के शोधकर्ताओं की एक टीम ने जीएमएफटी2ए , जो सोयाबीन के फोटोपेरियोड फूल मार्ग में एक इंटीग्रेटर है पर उत्परिवर्तन को प्रेरित करने के लिए क्रिस्पर/कैस –9 प्रणाली का भी इस्तेमाल किया। विकसित सोयाबीन के पौधों में देर से फूल आने लगे, जिसके परिणामस्वरूप वानस्पतिक आकार में वृद्धि हुई।

चाइनीज एकेडमी ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज और नेशनल सेंटर फॉर साइट्स वेरायटी इम्प्रूवमेंट और साउथवेस्ट यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने भी क्रिस्पर/कैस –9 के माध्यम से साइट्रस पौधों को विकसित किया है जो जैथोमोनस सिट्री के कारण साइट्रस कैंकर बीमारी के लिए प्रतिरोधी है।

कोल्ड स्पिंग हार्बर लेबोरेटरी ने विभिन्न संस्थानों के साथ मिलकर क्रिस्पर /कैस–9 का उपयोग टमाटर में फूल सप्रेसर में उत्परिवर्तन उत्पन्न करने के लिए किया, ताकि फोटोपेरियोड प्रतिक्रिया में बदलाव किया जा सके। क्रिस्पर /कैस–9 द्वारा लाए गए उत्परिवर्तन, तेजी से फल आने का कारण बना और टमाटर की कॉम्पैक्ट निर्धारित विकास वृद्धि को बढ़ाया, जिसके परिणामस्वरूप फूलों के उत्पादन और जल्दी उपज प्राप्त करने में तेजी आई।

ब्रैसिका नेपस में जीन के क्रिस्पर/कैस –9 उत्परिवर्तन के परिणामस्वरूप प्रति सिलिकिक अधिक बीज संख्या के साथ – साथ

दोनों के वजन में वृद्धि हुई है।

'सिसिलियन रूज' हाई गाबा टमाटर को क्रिस्पर/कैस–9 जीन एडिटिंग तकनीक का उपयोग करके विकसित किया गया है। इसमें गामा–एमिनोब्यूट्रिक एसिड (गाबा) की मात्रा एक नियमित टमाटर की तुलना में पांच गुना तक अधिक होती है। गामा–एमिनोब्यूट्रिक अमीनों एसिड तनाव और रक्तचाप को कम करने में मदद करता है।

पॉलीफेनोल ऑक्सीडेस (पीपीओ) पॉलीफेनोल्स के ऑक्सीकरण को उत्प्रेरित करते हैं, जिसमें बैंगन का कटा हुआ भाग भूरे रंग में परिवर्तित हो जाता हैं। इसका प्रसंस्करण उद्योग और ताजा खपत दोनों के लिए फलों की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। एक क्रिस्पर/कैस–9 आधारित उत्परिवर्तजन से तीन पीपीओ जीन (एसएमइआईपीपीओ4, एसएमइपीपीओ5 और एसएमइपीपीओ6) को नॉक–आउट किया गया था, जिससे काटने के बाद फल ने उच्च प्रतिलेख स्तर दिखाया। इसने पीपीओ गतिविधि को कम कर दिया और बैंगन को काटने के बाद उसके भूरेपन को कम कर दिया।

बीज के तेल का उपयोग खाद्य तेलों के रूप में और औद्योगिक अनुप्रयोगों के लिए भी किया जाता है। यद्यपि उच्च–ओलिक बीज तेल औद्योगिक उपयोग के लिए पसंद किया जाता है, परन्तु अधिकांश बीज तेल में पॉलीअनसैचुरेटेड फैटी एसिड (पीयूफए) अधिक मात्रा में और मोनोअनसैचुरेटेड फैटी एसिड (मियूफए) कम मात्रा में पाया जाता हैं। अधिक बीज तेल और पर्यावरणीय तनाव के प्रतिरोध के साथ एक उभरती हुई तिलहनी फसल कैमेलिना के तेल में 60 प्रतिशत पीयूएफए और 30 प्रतिशत एमयूएफए शामिल है। हैक्साप्लोइड कैमेलिना में एफएडी2 होमियोलोग्स के सभी तीन जोड़े को नॉकआउट कर दिया गया और इसके फलस्वरूप एक बौना झाड़ीदार पौधा तैयार हुआ, तथा उसके बीजों के एमयूएफए स्तर में 80 प्रतिशत तक वृद्धि हुई।

मुद्दे

क्रिस्पर/ कैस–9, 21वीं सदी की महत्वपूण खोजों में से एक है और इसका व्यापक रूप से वैज्ञानिक समुदाय और संम्बन्धित उद्योगों में उपयोग किया जाता है। लेकिन क्रिस्पर/ कैस –9 के उपयोग में तेजी से वृद्धि ने चिकित्सा, कृषि, पशुपालन और पर्यावरण में नए जैव–नैतिक, सामाजिक और कानूनी मुद्दों को जन्म दिया है। यह तकनीक अभी भी प्रगति के पथ पर है और मनुष्य ने इसके सभी आयामों को प्रकट नहीं किया है। वैज्ञानिक और शोधकर्ता इंसानों की सेवा के लिए इस तकनीक की खोज कर रहे हैं। हालांकि, ऐसी संभावना भी है कि क्रिस्पर/ कैस –9 के गैर–लक्षित प्रभाव हो सकते हैं, या जीन–बहाव द्वारा ऑफ–टारगेट उत्परिवर्तन हो सकते हैं। इसके अलावा, क्रिस्पर तकनीक आनुवंशिक रूप से संशोधित जीवों (जीएमओ) की पहचान करना मुश्किल बना देती है। यहां तक कि, इसके खोजकर्ता डा0 डौडना ने स्वयं वैज्ञानिक समुदाय को क्रिस्पर से जुड़े भ्रूण संपादन के अज्ञात परिणामों के बारे में चेतावनी दी थी। इसलिए क्रिस्पर को और अधिक सतर्क तरीके से तलाशने की जरूरत है क्योंकि हमें इसके दीर्घकालिक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष हानिकारक प्रभावों के बारे में अधिक जानकारी नहीं है। इन्हीं कारणों से जीएमओ अभी भी कई देशों में पूरी तरह से स्वीकार्य नहीं है।

निष्कर्ष

जीन सम्पादन पादप प्रजनन इनोवेशन का हिस्सा है। यह वर्षों की परम्परा पर आधारित है और उन्नत विज्ञान और पादप अनुवंशिकी की समझ का परिणाम है। जीन सम्पादन प्रजनकों को पौधे के अपने जीन पूल के भीतर काम करने की अनुमति दे सकता है, और उसे समापन बिन्दु तक पहुँचा सकता है जैसा कि वे पारम्परिक प्रजनन विधियों के माध्यम से करते हैं, लेकिन अधिक सटीकता और दक्षता के साथ। भारत में कशषि क्षेत्र की विभिन्न जरूरतों को पूरा करने के लिए इस शक्तिशाली तकनीक का उपयोग समय की मांग है।

अभिस्वीकृति

लेखक फसलों में जिनोम सम्पादन में अनुसंधान गतिविधियों का समर्थन करने के लिए डीएसटी–सीआरजी (प्रोजेक्ट कोड –सीआरजी/2020/001845) और डीएसटी–इंस्पायर फैकल्टी (डीएसटी /इंस्पायर /04/2017/001019) के आभारी हैं।

कैसे लें मौसम की विपरीत परिस्थितियों में अधिक उत्पादन

डॉ नीशू जोशी, डॉ सौरभ जोशी, असिस्टेंट प्रोफेसर,

कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान

डॉ दिनेश जीनगर, वैज्ञानिक

भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, वासद, गुजरात

एवं

डॉ एकता जोशी, वैज्ञानिक

राजमाता विजयराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय,

ग्वालियर, मध्य प्रदेश

जलवायु परिवर्तन के कारण लगातार विगत् वर्षों में वर्षा की मात्रा में कमी होती जा रही है। परिणामस्वरूप भूमिगत जल की मात्रा में भी कमी होने के कारण भू जल स्तर में निरन्तर गिरावट होती जा रही है। मोटे अनुमान के अनुसार पृथ्वी पर लगभग 75 प्रतिशत जल समुद्र में, 15 प्रतिशत नदियों में 6 प्रतिशत जल पहाड़ों पर जमी बर्फ तथा 4 प्रतिशत भूमिगत जल है। हम केवल भूमिगत जल का 95 प्रतिशत तक कृषि कार्यों में काम ले रहे हैं बाकी जल व्यर्थ बहकर नदियों व समुद्र में चला जाता है। भारतीय कृषि, पारम्परिक जल स्त्रोतों जैसे वर्षा, नदी, कुएं, तालाब आदि पर निर्भर है। भूमि पर उपयोगी जल की मात्रा सीमित है तथा भूमि पर उपस्थित जल स्त्रोतों व भू जल के अनियमित दोहन के कारण जल की उपलब्धता घटती जा रही है। आज भू जल का स्तर 1 मीटर प्रति वर्ष से भी अधिक दर से घट रहा है। आगामी दो–तीन दशकों में कृषि को मिलने वाले जल के अनुपात में 10–15 प्रतिशत कमी आने का अनुमान है।

इन परिस्थितियों को देखते हुये वर्षा को तीन मुख्य भागों में विभक्त किया गया है :

(क) समय पर मानसून का आना तथा बाद में फसल बढ़वार तक सूखा रहना :

प्रायः देखा गया है कि पिछले कुछ वर्षों में वर्षा असमान व अपर्याप्त हो रही है जिससे फसल की पैदावार प्रभावित होती है। इसके विपरीत कुछ स्थानों पर अधिक वर्षा हो रही है जहां फसल को इसकी आवश्यकता नहीं है। कुछ स्थानों पर बहुत कम वर्षा हो रही है जिसके अभाव में फसल सूख कर बर्बाद हो जाती है। उपरोक्त दशाओं को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित उन्नत सस्य तकनीकी अपनानी चाहिए, जिससे कि हमारा उत्पादन प्रभावित न हो और हम विपरीत दशाओं में भी अधिक उत्पादन ले सकें।

1. समय पर बुवाई : जहां तक हो सके, फसलों को उचित समय पर बोयें। इससे फसल द्वारा संरक्षित नमी का उपयोग अच्छा होगा एवं उनकी वानस्पतिक वृद्धि भी अच्छी होगी। देरी से बुवाई करने के लिये कम समय मे पकने वाली किस्में बोयें।

2. संतुलित उर्वरक प्रयोग : कार्बनिक खादों जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट व वर्मीकम्पोस्ट को खरीफ फसलों से लगभग 20–25 दिन पूर्व प्रयोग करें व जुताई कर भूमि में अच्छी तरह मिला दें। जैविक खादों के प्रयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक व जैविक दशा सुधरेगी जिससे भूमि, उपलब्ध जल की मात्रा को अधिक समय तक भण्डारित कर सकती है। संतुलित उर्वरक प्रयोग से पौधों द्वारा जल उपयोग में वृद्धि के साथ उपज में भी वृद्धि होती है। फलस्वरूप उर्वरक जल उपयोग दक्षता बढ़ाने में सहायता करते हैं। पर्याप्त नमी

की अवस्था में खड़ी फसल में नत्रजन की अधिशेष मात्रा देने से उपज में बढ़ोतरी होती है, परन्तु जहां नमी की कमी हो वहां खड़ी फसल में उर्वरकों का प्रयोग नहीं करना चाहिये बल्कि उर्वरकों को बुवाई से पूर्व कूंड में ऊरकर देने से फायदा होता है। मिट्टी परीक्षण अवश्य कराएं और यदि सूक्ष्म तत्वों की कमी हो तो उनका भी प्रयोग अवश्य करें। जैसे दलहन, तिलहन एवं मसाला फसलों में गन्धक (सल्फर) का प्रयोग काफी लाभकारी पाया गया है। यदि खड़ी फसल में सूक्ष्म तत्वों की कमी दिखाई दे तो सूक्ष्म तत्वों के घोल का स्प्रे करें।

3. फसल ज्यामिति : अधिक फसल पैदावार उसकी ज्यामिति पर निर्भर करती है। फसलों को उचित दूरी पर बोयें तथा पौधे से पौधे की दूरी भी पर्याप्त रखें। पानी की कमी की दशा में फसल की ज्यामिति ठीक करें तथा 25 प्रतिशत पौधों को उखाड़कर मल्च के रूप में नमी को संरक्षण करते हुए अधिक उत्पादन ले सकते हैं।

4. खरपतवार नियंत्रण : खरपतवार फसलों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सबसे ज्यादा हानि पहुंचाते हैं। ये उपलब्ध जल व पोषक तत्वों का ह्रास कर फसल को उपलब्ध नहीं होने देते हैं। अतः समय–समय पर समुचित विधियों के द्वारा इनका नियंत्रण अवश्य करें।

5. मृदा विछावन (मल्चिंग) द्वारा नमी संरक्षण: निराई–गुड़ाई द्वारा निकाले गये खरपतवारों को खेत से बाहर नहीं फेंके, यह जरूर ध्यान रखें कि खरपतवारों में फूल न बने हों, फसल की दो कतारों के मध्य खरपतवारों को इस प्रकार बिछा दें कि उनकी जड़ें जमीन को न छुएं यानि कि खरपतवारों के पत्तों पर ही जड़ें रखी रहें। इस प्रकार सूखकर यह खरपतवार मल्च का कार्य करेगी, दूसरा खरपतवार नहीं उगने देगी तथा नमी संरक्षण में सहायक होगी। साथ ही साथ सड़कर भूमि में जीवांश की मात्रा बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होंगे।

6. नमी संरक्षण हेतु गुड़ाई : समय–समय पर भूमि की गुड़ाई करने से जमीन से पानी उड़ने की प्रक्रिया काफी कम हो जाती है क्योंकि ऊपरी परत टूटने से कैपीलरी क्रिया भी कम हो जाती है तथा पौधों की जड़ों में नमी संरक्षित रहती है।

7. यूरिया का पर्णीय छिड़काव : बारानी क्षेत्रों में दलहनी फसलों में दाना बनते समय पर्याप्त नमी का अभाव तथा जड़ ग्रन्थियों में ह्रास के कारण नाइट्रोजन की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध नहीं हो पाती है। इसकी पूर्ति हेतु यूरिया का दो प्रतिशत पर्णीय छिड़काव करने से पत्तियों में नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि होती है तथा पत्तियां प्रकाश संश्लेषण क्रिया हेतु अधिक समय तक सक्रिय बनी रहती हैं। बारानी क्षेत्रों में दलहनी फसलों के उत्पादन बढ़ाने हेतु यह तकनीक अत्यन्त सुगम तथा सस्ती है।

8. फसल की क्रान्तिक अवस्था पर सिंचाई करें : फसलों को उपलब्ध जल के आधार पर एक व दो जीवनदायी सिंचाई अवश्य प्रदान करें।

9. कीट व व्याधियों की रोकथाम : उन्नत सस्य विधियों से वांछित लाभ प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि पौधे स्वस्थ्य एवं शक्तिशाली हों क्योकि स्वस्थ पौधे ही उपलब्ध जल का दक्षतापूर्ण उपयोग कर सकते है। अतः समय पर कीट नियंत्रण की अनुसंशित विधियों द्वारा कीट नियंत्रण करें।

(ख) देरी से मानसून का आना व जल्दी रूक जाना :

मानसून के देरी से आने पर खरीफ की बुवाई देरी से करने से फसल की पैदावार प्रभावित होती है। इस दशा में मानसून आकर भी जल्दी रूक जाता है, जिससे फसल की क्रान्तिक अवस्थाएं जैसे फूल आने व दाना बनते समय पानी की कमी के कारण उपज प्रभावित हो जाती है। उपरोक्त दशाओं को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित उन्नत सस्य तकनीक अपनानी चाहिए :

1. फसलों का चयन : वर्षा को ध्यान में रखते हुए फसलों का चयन करना चाहिए। समय पर मानसून की वर्षा होने पर अधिक जल मांग वाली फसल बोनी चाहिये जैसे सोयाबीन, मक्का, ज्वार व मूंगफली। किसी कारणवश मानसून की वर्षा देरी से होती है तो कम समय, कम जल मांग वाली फसल लेनी चाहिए जैंसे उड़द, मूंग व तिल।

2. कम समय में पकने वाली किस्में : वर्षा आधारित क्षेत्रों हेतु अल्पावधि की किस्मों का चयन करें तथा साथ ही ये किस्में कीट

एवं व्याधियों से प्रतिरोधी भी होनी चाहिये।

3. सिंचाई की उन्नत विधियॉ अपनाएं : फसल की जल मांग के अनुसार क्रान्तिक अवस्थाओं पर सिंचाई करें जिससे उपलब्ध जल का सर्वाधिक उपयोग हो सके और अच्छी उपज प्राप्त हो। फसल को छोटे–छोटे प्लॉट बनाकर या क्यारी विधि से पानी दें तथा क्यारी में जब 80 प्रतिशत भाग में पानी भर जाये पानी बन्द कर दें ताकि शेष भाग रिसाव द्वारा स्वतः ही सिंचित हो जायेगा। इस विधि से हम लगभग 20 प्रतिशत पानी की बचत कर सकते हैं। पानी की कम उपलब्धता की स्थिति में सिंचाई की फव्वारा विधि अपनाएं।

(ग) लम्बे समय तक वर्षा न होना : इस दशा में खरीफ की फसल काफी प्रभावित होती है। खेती योग्य क्षेत्रफल घटकर कम हो जाता है तथा औसतन पैदावार कम होती है। प्रायः यह भी देखा गया है कि मानसून देरी से आकर अतिवृष्टि करता है जिसमें कुल बोये गये क्षेत्रफल को काफी नुकसान पहुंचता है।

उपरोक्त दशाओं को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित उन्नत सस्य तकनीकी अपनाएं :

1. अन्तरवर्तीय फसलें : फसल की जल मांग व पकने की अवधि को ध्यान में रखकर पानी की कमी के समय अन्तरवर्तीय फसलें लेने से भी अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। जैसे : सोयाबीन + अरहर, सोयाबीन + मक्का, सोयाबीन + तिल, सोयाबीन + कपास, मक्का + उड़द, मक्का + मूंग, मक्का + तिल या ज्वार + सोयाबीन इत्यादि उपयुक्त अन्तवर्तीय फसल के रूप में लें।

2. एक लाइन रोककर बुवाई (स्किप रो प्लाटिंग) : अधिक दूरी चाहने वाली फसलें जैसे कपास, मक्का में एक लाइन को रोककर बुवाई करें।

3. डस्ट मल्चिंग (गुड़ाई) : अधिक सूखे की अवस्था में फसल में समय–समय पर एक या दो गुड़ाई करने से पानी की कमी को दूर किया जा सकता है।

भूमि में जल का संरक्षण करना : यदि वर्षा के जल का सही संरक्षण कर लिया जाए तो वर्ष में कम से कम एक या दो अच्छी फसलें पैदा की जा सकती हैं। अप्रत्यक्ष रूप से वर्षा जल को संरक्षित करने के लिये निम्न विधियां अपनाएं :

1. भूमि नमी का अधिकतम संग्रहण : इसके लिये गर्मियों में गहरी जुताई करके वर्षाकाल में भी आवश्यक जुताइयां करें तथा भूमि में नमी को रोकने के लिये पाटा अवश्य लगायें।

2. भूमि तल पर जल संरक्षण : वर्षा का जल, वाष्पीकरण व भूमि तल पर बहने के कारण बेकार चला जाता है। इन क्षेत्रों में जलाशयों को बनाकर जल संरक्षण करना चाहिए जो कि फसलों की सिंचाई के उपयोग में आ सके।

3. सस्योत्पादन स्वरूप : इन क्षेत्रों में फसलों के मिश्रण इस प्रकार बनायें जिनसें अधिक गहरी जड़ों वाली फसलों के साथ कम गहरी जड़ों वाली फसलें हो जिससे विभिन्न स्तर से जल लेकर भूमि से नमी ह्रास को संतुलित कर सकें। उदाहरण : सोयाबीन–चना, उड़द–सरसों।

4. खेत की मेड़ बांधना : वर्षा के जल को अधिक से अधिक रोकने के लिये खेतों के चारों ओर मजबूत मेड़ बनाई जाए। खेत के ढ़ालू होने पर ढ़ाल के विपरीत समोच्च रेखा पर मजबूत बांध भी बनाना चाहिये।

5. खेत को समतल करना : खेत को समतल करने पर वर्षा का जल खेत में समान रूप से फैलकर शोषित होता है तथा मृदा कटाव भी कम होता है।

6. खादों का उचित प्रयोग : भूमि में संरक्षित नमी को बनाये रखने तथा फसल की अच्छी वृद्धि के लिये कार्बनिक खादों का प्रयोग करना चाहिये। प्रतिवर्ष वर्षाकाल में अच्छी, सड़ी–गली 5–7 टन गोबर या कम्पोस्ट खाद को देने से भूमि की भौतिक दशा में सुधार होता है। इससे भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है जिससे फसल की अच्छी वृद्धि होती है।

पीबीडब्ल्यू 1 चपातीः उत्कृष्ट मिलिंग और बेकिंग गुणवत्ता वाली गेहूं की किस्म

अचला शर्मा, जी.एस. मावी, पूजा श्रीवास्तवा, सतिंदर सिंह, एवं वी.एस.सोहू,
पौध प्रजनन और आनुवंशिकी विभाग,

महेश कुमार,
प्रसंस्करण और खाद्य इंजीनियरिंग विभाग,

अमरजीत कौर,
खाद्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना

दुनिया की 50 प्रतिशत से अधिक आबादी के लिए गेहूं एक मुख्य भोजन है और इसका उपयोग विभिन्न प्रकार के अनाज उत्पादों को तैयार करने के लिए किया जाता है। भारतीय उपमहाद्वीप में खाया जाने वाला पारंपरिक भोजन रोटी है जिसे चपाती के नाम से जाना जाता है। भारत में गेहूं की उपज का बड़ा हिस्सा (80–90 प्रतिशत) चपाती के रूप में खाया जाता है, जबकि उपज के छोटे हिस्से का उपयोग अन्य पके हुए उत्पादों जैसे ब्रेड, बिस्कुट आदि के रूप में किया जाता है। ज्यादातर मामलों में, गेहूं को उपयोग करने के लिए पहले पीसा जाता है और गेहूं के आटे की गुणवत्ता किसी विशेष उत्पाद के लिए इसकी उपयुक्तता निर्धारित करती है। किसानों के लिए उपलब्ध गेहूं की विभिन्न किस्मों में स्वाद, मिठास, बनावट और कोमलता आदि के मामले में चपाती की गुणवत्ता काफी अलग होती है। चपाती की आदर्श विशेषताएँ इसकी बनावट, स्वाद, नरम होना और पकने के बाद छोटे भूरे धब्बे हैं। किसान अक्सर खेती के लिए सबसे अच्छी चपाती की गुणवत्ता वाले गेहूं की मांग करते रहे हैं। हाल ही में, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना ने पंजाब राज्य में समय पर सिंचित स्थिति के तहत व्यावसायिक खेती के लिए प्रीमियम गुणवत्ता वाली गेहूं की किस्म, "पीबीडब्ल्यू1 चपाती हेतु जारी की है। पीबीडब्ल्यू 1 चपाती में उत्कृष्ट गुणवत्ता है और यह अच्छी उपज और रोग प्रतिरोधक क्षमता में देसी के साथ–साथ प्रचारित एमपी गेहूं की तुलना करती है। इसके आटे से बनी चपाती बनावट में नरम, सफेद विशिष्ट पके हुए गेहूं की पारम्परिक सुगंध के साथ मीठी होती है और पकाने के घंटों के बाद भी नरम रहती है। पीबीडब्ल्यू 1 चपाती के आटे से बनी रोटी ठंडी होने पर भी कड़क नहीं होगी जबकि बाकी आटे से बनी रोटी ठंडी होने पर खाने में अच्छी नहीं लगती। यह किस्म अपने प्रीमियम गुणवत्ता मानकों के साथ बाजार में उच्च कीमत प्राप्त करती है क्योंकि वैश्विक स्तर पर चपाती गुणवत्ता वाले गेहूं का बाजार पहले ही महामारी के दौरान उपभोक्ता जागरूकता के युग में बनाया जा चुका है।

सी 306 की तुलना में पीबीडब्ल्यू1 चपाती की विशेषताएं

विशेषता	पीबीडब्ल्यू 1 चपाती	सी 306
अनाज की उपज (क्विं/हैक्टेयर)	17.2	12.9
पीला रतुआ	मध्यम प्रतिरोधी	अतिसंवेदनशील
भूरा रतुआ	प्रतिरोधी	अतिसंवेनशील
पौध की ऊँचाई (सेमी)	103	132
परिपक्वता के दिन	154	159
चपाती स्कोर (अधिकतम 10)	8.0	8.0
मिठास/कुल शर्करा (मिलीग्राम/ग्राम)	48.8	43.14
फिनोल प्रतिक्रिया	2.1	2.7
चपाती की गुणवत्ता (अधिकतम 5)	4.8	4.7

पीबीडब्ल्यू1 चपाती के आटे और चपाती की विशेषताएं

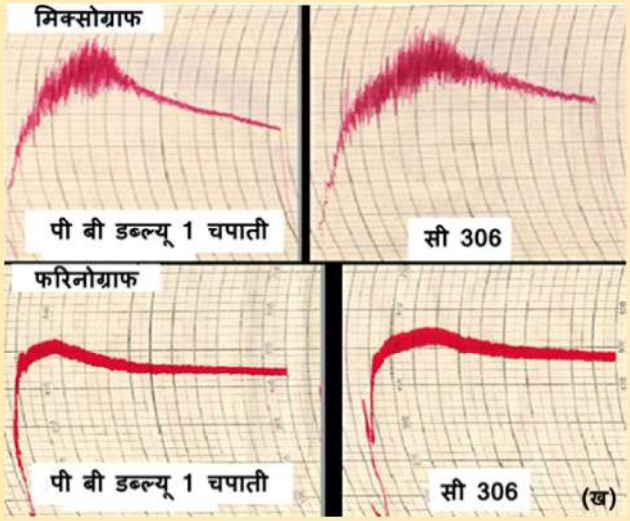

मिक्सो और फेरिनोग्राफ के माध्यम से आटा गुणवत्ता

मिलिंग, एण्डोस्पर्म से चोकर और अंकुर को अलग करने की प्रक्रिया है ताकि इसे आटा बनाया जा सके। इस प्रक्रिया में कई चरण हैं जो अंतिम उत्पाद की गुणवत्ता निर्धारित करते हैं। गेहूं को आमतौर पर यंत्रवत् संचालित स्टोन मिलों या रोलर आटा मिलों के माध्यम से पीसा जाता है। कुछ लोग मानते हैं कि आटा बिना छाने प्रयोग करना चाहिये ताकि फाइबर और रेशे खाने में प्रयोग किये जा सकें, लेकिन चपाती पूरे चोकर के साथ नरम नहीं रहती है। इसलिए आमतौर पर लोग आटे में से कुछ चोकर निकाल लेते हैं। परन्तु पौष्टिक रूप से समृद्ध भोजन के लिए उपभोक्ताओं की जागरूकता ने रोलर मिल्ड आटा (रिफाइंड आटा) की तुलना में पूरे गेहूं के आटे की मांग में भी वशद्धि हुई है क्योंकि पूरे गेहूं का आटा अधिक पौष्टिक (खनिज, विटामिन बी, फाइबर इत्यादि) होता है जोकि स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। पूरे गेहूं का आटा जैसा कि इसके नाम से पता चलता है, गेहूं के पूरे अनाज से बना आटा है, जिसमें से कुछ भी नहीं निकाला जाता और जिसमें कुछ भी नहीं डाला जाता है और इसमें गेहूं के दाने के सभी भाग होते हैं। पिसे हुए कणों का आकार 600 माइक्रोन आईएस – 180 माइक्रोन आईएस की सीमा में होता है। छोटे कण आकार में पीसा आटा पानी को एंजाइमों तक पहुंचने में आसान इंगित करता है और आटा नर्म गूंथा जाता है। आमतौर पर रोलर–मिल्ड, ब्लीच किया हुआ आटा होता है जिसमें कारमेल और कभी–कभी कुछ चोकर मिलाया जाता है। 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत चोकर (गेहूं की बाहरी परत) को छनने के लिए छोड़ दिया जाता है।

पीबीडब्ल्यू1 चपाती की कम फिनोल प्रतिक्रिया

पीबीडब्ल्यू1 चपाती के आटे का रंग गूंथने के एक दिन बाद

रोटी, नान या परांठा बनाने के लिये आटा थोड़ा मुलायम गूंथा जाता है। बेहतर रोटी के लिये गेहूं का आटा गूंथते समय इसके आयतन से आधा पानी लगता है। यदि दो कप आटा गूंथ रहे हैं तो आप एक कप पानी ले सकते हैं। लेकिन पीबीडब्ल्यू 1 चपाती का आटा अन्य किस्मों की तुलना में गूंथने में अधिक पानी लेता है जिससे रोटी नरम हो जाती है। अच्छी रोटी के लिए आटे में मुक्कियां लगाकर बार बार आटे को दायें हाथ से उठाकर पलटिये। (आटे को ज्यादा सख्त और ज्यादा पतला मत कीजिये)। आटा एक जैसा हो जाने पर उसे मुक्कियां लगाकर, अगर आवश्यकता हो तो उसके ऊपर थोड़ा 2 – 3 छोटी चम्मच पानी छिड़क कर, 20– 25 मिनट के लिये ढककर रख दें। 20 मिनट बाद आटे को उठाकर इकठ्ठा कीजिये। बार बार मुक्किया लगाकर, इकठ्ठा करके चिकना और मुलायम कीजिये और इससे आटा चपाती बनाने के लिए तैयार है। यदि चपाती एकदम फूल जाय तो इसका अर्थ है यह अच्छी तरह से सिक रही है और पीबीडब्ल्यू 1 चपाती की रोटी हल्की सफ़ेद होने तक पकती व अच्छी फूलती है। यह रोटी 5–6 घंटे या और भी ज्यादा समय बाद में भी खाने में नरम रहती है।

चपाती के मामले में, सफेद रंग उपभोक्ताओं द्वारा पसंद किया जाता है लेकिन अधिकांश आधुनिक गेहूं का आटा गूंथने के कुछ समय बाद काला हो जाता है। पीबीडब्ल्यू1 चपाती में आधुनिक गेहूं की किस्मों की तुलना में कम फिनोल प्रतिक्रिया स्कोर होता है। कम फिनोल अभिक्रिया गूंथने के बाद आटे को कम या कम से कम काला करती है इसलिए पीबीडब्ल्यू1 चपाती का आटा गूंथने के एक दिन बाद भी भूरा/काला नहीं होता और इसके आटे से उत्कृष्ट चपाती पकती है।

गेहूं के दाने की कठोरता गेहूं की किस्मों द्वारा विभिन्न विस्तारों में व्यक्त किया जाने वाला एक प्रमुख गुणवत्ता पैरामीटर है। पीबीडब्ल्यू1 चपाती का दाना सख्त और इसमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है और यह चपाती पकाने के लिए उपयुक्त है। इस किस्म को प्रीमियम चपाती के आटे के लिए मिलर्स द्वारा पसंद किया जाना चाहिए। मिल्ड गेहूं की एक महत्वपूर्ण क्रिया एक एंजाइम की गतिविधि है जो स्टार्च को तोड़ती है जिसके परिणामस्वरूप खराब गुणवत्ता वाला आटा तैयार होता है और हैगबर्ग फॉलिंग नंबर (एच. एफ. एन) का उपयोग करके मापा जाता है और इस किस्म में उच्च एच. एफ. एन. मूल्य घरेलू उपभोक्ताओं के साथ–साथ मिलर्स द्वारा अपनी पसंद को बढ़ावा देता है। गेहूं की नई किस्म पीबीडब्ल्यू1 चपाती में प्रसंस्करण उद्योग के लिए काफी संभावनाएं हैं। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि यह नई किस्म उन घरेलू उपभोक्ताओं के लिए उपयुक्त है जो नरम, स्वादिष्ट, मीठी और आकर्षक सफेद रंग की चपाती चाहते हैं। औद्योगिक स्तर पर विशेष रूप से चपाती के आटे के लिए इसके वांछनीय प्रसंस्करण गुण ही मिलर्स के लिए एक पसंदीदा विकल्प हैं।

दुधारू पशुओं के लिए पौष्टिक आहारः अजोला

विकास कुमार, मोती लाल मीणा, मधु सुदन कुण्डु एवं पुष्पा सिंह

कृषि विज्ञान केन्द्र, तुर्की, मुजफ्फरपुर (बिहार)–843121
डॉ.राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा–848125

अजोला, जल सतह पर मुक्त रूप से तैरने वाली जलीय फर्न है। यह छोटे–छोटे समूह में सघन हरित गुच्छे की तरह तैरती एवं फैलती है। भारत में इसकी प्रजाति अजोला *पिन्नाटा* एवं *एनाबियाना* काफी उपयुक्त पाई गई है। यह अधिक गर्मी सहन करने वाली किस्म है। इसकी खेती काफी वृहद रूप से चीन, वियतनाम और फिलीपाइन्स में की जाती है। दक्षिण भारत में खासकर तमिलनाडु और केरल एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली, अजमेर, जयपुर में काफी क्षेत्रों में इसका उत्पादन किया जा रहा है। अजोला कम लागत वाला पशुओं के लिए एक पौष्टिक आहार है। शुष्क भार के आधार पर इसमें 25–35 प्रतिशत प्रोटीन, 10–12 प्रतिशत खनिज पदार्थ एवं 7–10 प्रतिशत अमीनों अम्ल पाया जाता है। यह शीघ्र वृद्धि वाली किस्म हैं। बुवाई के पश्चात इसका उत्पादन 8–10 दिन के अन्दर प्राप्त होना शुरू हो जाता है। अजोला में ज्यादातर सभी आवश्यक अमीनों अम्ल, मेंनी प्रोवोमोरिक्स, बायो पॉलीमर्स तथा बीटा केरोटीन पाये जाते हैं। इन्हीं जैव रसायनों से भरपूर होने के कारण यह पशुओं के लिये आदर्श जैविक पूरक आहार कहा जा सकता है। पशु अजोला को आसानी से पचा सकते हैं, क्योंकि इसमें रेशा तथा लिग्निन कम मात्रा में पाया जाता है। अजोला को पूरक आहार के रूप में भी प्रयोग करने पर 15–20 प्रतिशत कुल दुग्ध उत्पादन बढ़ जाता है। देश के विभिन्न प्रदेशों एवं क्षेत्रों में चारे एवं पोषक तत्वों की कमी को पूर्ण करने के लिये अजोला उत्पादन को वृहद स्तर पर प्रोत्साहित किया जा रहा है। यह जल के स्थिर स्रोतों में प्राकृतिक रूप से भी उगाया जा रहा है।

अजोला, अजोसी कुल का एक सदस्य है जो कि मूलतः पानी में उगने वाला फर्न है। यह नम, आर्द्रतर एवं गर्म जलवायु में आसानी से उगाया जा सकता हैं। अजोला अपनी वृद्धि के लिए वायुमंडलीय नाइट्रोजन का उपयोग करता है जो कि पौधे में संरक्षित रहता है। परिणामस्वरूप प्रोटीन से भरपूर होता है। अजोला में खनिज तत्वों जैसे कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैंगनीज, जस्ता तथा तांबा आदि की मात्रा पायी जाती है। इसके अलावा इसमें विटामिन 'ए' तथा विटामिन 'बी12' काफी मात्रा में पाया जाता है। साथ ही साथ इसमें सभी आवश्यक अमीनों अम्ल पर्याप्त मात्रा में होते हैं। दुधारू पशुओं जैसे–गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि के आहार में सस्ते जैविक पूरक राशन के रूप में अजोला का उपयोग कर प्रोटीन तथा हरे चारे की कमी को पूरा किया जा सकता है। अजोला का चुनाव खासकर इसलिए किया गया, क्योंकि यह पशुओं के लिए एक संतुलित आहार के रूप में पाया गया है। इसमें प्रोटीन की प्रचुर मात्रा, खनिज पदार्थ एवं अमीनो अम्ल भी पायी जाती है। अजोला के खिलाने से न केवल पशु स्वस्थ एवं निरोग रहता है, बल्कि दूध की उत्पादकता में भी

10–15 प्रतिशत की वृद्धि पाई गई है। इसके अलावा शारीरिक विकास में भी यह काफी सहायक सिद्ध हुआ है। सभी तीनों चयनित केन्द्रों पर अजोला प्रदर्शन की एक–एक इकाई विकसित की गई।

अजोला उत्पादन की विधि

- कृत्रिम रूप से अजोला के उत्पादन हेतु 15–20 सें.मी. गहरे पानी के गड्ढे की आवश्यकता होती है।

सारणी–1 अजोला का रासायनिक संघटन (शुष्क भार आधार पर)

क्र.स.	पोषक तत्व	मात्रा (प्रतिशत)
1	प्रोटीन	22.5
2	रेशा	12.5
3	वसा	03.2
4	कार्बोहाइड्रेट	50.0
	खनिज लवण	
1	कैल्शियम	1.16
2	फॉस्फोरस	1.29
3	मैंगनिशियम	0.35
	सूक्ष्म तत्व	
1	मैंगनीज	174.42
2	जिंक/जस्ता	87.59
3	कॉपर/तांबा	16.74

- गड्ढे का आकार 4 मीटर लम्बा, 1.5 मीटर चौड़ा तथा 20 सें.मी. गहरा उपयुक्त होता है।
- इसके बाद गड्ढे की सतह पर प्लास्टिक बिछा देते हैं, जिससे पास–पास लगे पेड़ों की जड़ें गड्ढें में न जाएं। प्लास्टिक के लगे होने से गड्ढे में रिसाव द्वारा बाहर का पानी नहीं पंहुचता तथा गड्ढे का तापमान भी नियंत्रित रहता है।
- गड्ढे में प्लास्टिक काक इस प्रकार से बिछाना चाहिए जिससे उसमें परत न पड़ें।
- लगभग 10–15 कि.ग्रा. छनी हुई मिट्टी समान रूप से पॉलीथीन के ऊपर डाल देते हैं।
- इसके बाद 5 कि.ग्रा. गोबर, 20 ग्राम अजोफर्ट या एस.एस.पी. का 10 लीटर पानी में घोल बनाते हैं तथा इस घोल को गड्ढे में डालते हैं। इसके बाद और अधिक पानी को गड्ढे में डालते हैं, जिससे पानी का स्तर 8 सें.मी. हो जाये।
- लगभग 1–2 कि.ग्रा. ताजा, बीमारी मुक्त अजोला का बीज गड्ढे में डालते हैं।
- अजोला 7–10 दिन में पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर गड्ढे में भर जाता है। इस प्रकार लगभग 4 वर्ग मीटर के गड्ढे से 2 कि.ग्रा. अजोला प्रतिदिन प्राप्त कर सकते हैं।
- प्रत्येक 7 दिनों के अंतराल पर गोबर 2 कि.ग्रा., अजोफॉस 25 ग्राम, 20 ग्राम अजोफर्ट को 2 लीटर पानी में घोलकर गड्ढे में डालते रहना चाहिए, जिससे अजोला का उत्पादन अधिक एवं टिकाऊ बना रहता है।

अजोला की कटाई

- अजोला 8–10 दिन में तैयार हो जाता है, जिसे प्लास्टिक की छलनी से जिसके सुराख एक से.मी. आकार के हों, उसके द्वारा निकालना चाहिए ताकि पानी गड्ढे में ही रहे।
- आधी बाल्टी पानी में अजोला को अच्छी तरह से धो लेना चाहिए। उसके बाद ही इसका प्रयोग दुधारू पशुओं के लिए किया जाना चाहिए ताकि गोबर की गंध खत्म हो जाये फिर पशु इसे स्वाद से खाते हैं।
- 5X1.5 मीटर के गड्ढे से लगभग डेढ़ से दो कि.ग्रा. अजोला प्रतिदिन प्राप्त किया जा सकता है।
- अजोला उत्पादन में डेढ़ से दो रूपये प्रति कि.ग्रा. का खर्च आता है।

अजोला के उपयोग में सावधानियां

- पौधा परिपक्व स्थिति में न आए इसका ध्यान रखते हैं।

- गड्ढे में जल का तापमान 30^0 सेल्सियस से कम नहीं होना चाहिए अधिक तापमान होने पर छप्पर या अन्य साधनों से तापमान को नियंत्रित रखना चाहिए।
- जैव पदार्थ को प्रतिदिन या एक दिन के अंतराल पर निकाल लेना चाहिए, जिससे अजोला अधिक घना न हो। अजोला के गड्ढे में जल होना चाहिए।
- अजोला पशुओं को देने से पहले अच्छी तरह धो लेना चाहिए, जिससे गोबर की गंध खत्म हो जाये तथा अन्य अवांछनीय गंदगी साफ कर लेनी चाहिए।
- तीन माह के अंतराल पर अजोला की मिट्टी एवं पानी को बदल देना चाहिए। इसके उपरान्त गड्ढे में पालीथीन को निकाल कर साफ कर लेना चाहिए एवं उसमें नई मिट्टी एवं वर्मी कम्पोस्ट 10–15 कि.ग्रा. पुनः शीट पर समान रूप से फैलाकर फिर से गोबर का घोल और साफ अजोला डालें। जिससे अजोला का उत्पादन समान रूप से मिलता रहे।
- बीच–बीच में साफ पानी का स्तर कम होने पर अजोला के गड्ढे में पानी डालकर इसका स्तर 5–6 इंच तक बनाये रखना चाहिए।
- अजोला गड्ढे से निकाली गई मिट्टी एवं पानी को फेंकने की बजाय अपने बागवानी एवं खेतों में डालें जिससे वो एक जैविक खाद के रूप में मिट्टी को मिलेगी एवं इसके पौष्टिक तत्व से जमीन को उपजाऊ बनाया जा सके।
- अजोला को पशु आहार में 10–30 प्रतिशत (उपलब्धता के आधार पर) के बीच देना चाहिए। इसे सिर्फ पूरक के रूप में उपयोग करना चाहिए।

अजोला का लाभ

- अजोला के किसानों के खेत में परीक्षण के दौरान यह पाया गया कि अजोला एक कम लागत वाली हरे चारे के रूप में पौष्टिक आहार वाली फसल है।
- अजोला को गाय, भैंस, मुर्गी, भेड़, बकरी बड़े चाव से खाते हैं और आसानी से पचाते हैं जिसके फलस्वरूप दुग्ध के उत्पादन में 10–15 प्रतिशत वृद्धि पायी गयी है एवं एक माह लगातार नियमित रूप से खिलाने से बकरी, सुअर, मुर्गी के वज़न में संतोषजनक लगभग 25–30 प्रतिशत तक वृद्धि पायी गयी है।
- अजोला का उपयोग दुधारू पशुओं के लिए करने से पशुओं को दी जाने वाली खली एवं चोकर की बचत होती है।
- इसके साथ–साथ लगभग 30–40 प्रतिशत यूरिया की बचत होती है। इसके फलस्वरूप धान की उत्पादन लागत में भी कमी आयी है, जो लघु एवं सीमांत किसानों के लिए एक वरदान साबित हुआ है।
- इसके साथ–साथ अजोला की उत्पादन विधि इतनी आसान व सरल है कि इसका उत्पादन घर की महिलायें भी कर सकती हैं। पशुओं एवं छोटे जानवरों जैसे बकरी, मुर्गी, बतख, सुअर के लिए इसका उपयोग कर कम समय में उनका औसत वज़न बढ़ाकर अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं।
- धान के खेत में अजोला का प्रयोग एक जैविक खाद के रूप में पाया गया है, जिसके फलस्वरूप मृदा में जैविक कार्बन

सारणी–2 अजोला से प्रति इकाई लाभ/ लागत का ब्योरा

उत्पाद	मात्रा	लाभ/लागत (रूपये)
लागत		
क्यारी बनाने की मजदूरी	1 मजदूर 285/–	285/–
छांया करने के लिए ग्रीन नेट, छप्पर आदि	20 मीटर (वर्ग मीटर दर 16 प्रति मीटर)	320/–
प्लास्टिक सीट (काले रंग की)	25 मीटर (दर 18/– प्रति मीटर)	450/–
गोबर ताजा	25 किलोग्राम (दर 2 प्रति किलो)	50/–
अजोला बीज	5 किलोग्राम (50/– प्रति किलो)	250/–
कुल लागत	–	**1355/–**
अजोला से लाभ	प्रतिदिन कुल उत्पादन (5 क्यारियों से), 2.5 किलोग्राम	125 रूपये प्रतिदिन की कमाई (**37500 रूपये** का शुद्ध लाभ प्रतिवर्ष)
हरे चारे की बचत	15X3	45 रूपये की बचत प्रतिदिन

की वृद्धि हुई एवं मिट्टी की उर्वरता बढ़ी है। यह कृषि को दीर्धकालीन एवं शुद्ध वातावरण बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है।

अजोला का लाभ लागत विश्लेषण

अजोला का लागत देखें तो बहुत ही कम खर्चे में अधिक मुनाफा है क्योंकि इसमें ज्यादा पैसें लगाने की जरूरत नहीं होती है। किसान अपने घर एवं प्रक्षेत्र में छायादार जगह पर इसका उत्पादन कर सकते हैं, क्योंकि इसमें सिर्फ एक क्यारी में बिछाने के लिए प्लास्टिक शींट की जरूरत पड़ती है। अजोला से प्रतिवर्ष लगभग 37500 रूपये का शुद्ध लाभ मिल सकता है।

अजोला खिलाने से पशुओं में लाभ

अजोला एक संपूर्ण पोषक तत्वों का खजाना है जिससे पशुओं के सभी पोषक तत्वों की पूर्ति होती है। पशुओं को नियमित अजोला खिलाने से उनके उत्पादन में वृद्धि होने के साथ–साथ उनके शरीर में में भी वृद्धि होती है। वृद्धि के साथ पशु चारा व पानी संतुलित मात्रा में ग्रहण करते हैं तथा स्वस्थ रहते हैं। सबसे अधिक लाभ गाय में पाया गया है, क्योंकि गाय, चमड़े, कपड़े, मिट्टी आदि नहीं खाती। गाय को संतुलित चारा नहीं खिलाने पर उसके शरीर में पोषक तत्वों की कमी आती है, जिससे वह चमड़ा, चप्पल, कपड़े व पोलिथिन को खाती है। सर्वे में देखा गया कि जिस गाय को प्रतिदिन अजोला खिलाया, वह इन सब चीजों को नहीं खाती हैं।

सारणी–3 अजोला को पशुओं को खिलाने से उनके उत्पादन में वृद्धि एवं लाभ

पशु का नाम	मात्रा	वृद्धि शरीर भार प्रतिशत/उत्पादन
गाय	1.5 कि.ग्रा. प्रति दिन	15 प्रतिशत
भैंस	1.5 कि.ग्रा. प्रति दिन	12 प्रतिशत
बकरी	1.0 कि.ग्रा. प्रति दिन	15.9 प्रतिशत
भेड़	1.0 कि.ग्रा. प्रति दिन	16.0 प्रतिशत
मुर्गी	150 ग्राम प्रति दिन	12.5 प्रतिशत
सुअर	2.0 कि.ग्रा. प्रति दिन	20.0 प्रतिशत
घोड़ा	1.5 कि.ग्रा. प्रति दिन	11.5 प्रतिशत

किसानों द्वारा अजोला इकाई का भ्रमण

अजोला पर प्रशिक्षण

प्लास्टिक टैंक में अजोला उत्पादन

पशु में ब्याने के बाद जेर का समय से न गिरना: उपाय एवं समाधान

डॉ राम निवास ढाका, विषय विशेषज्ञ (पशुपालन),

डॉ चारू शर्मा, विषय विशेषज्ञ (गृह विज्ञान प्रसार शिक्षा) एवं

डॉ के जी व्यास, विषय विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान)

कृषि विज्ञान केन्द्र, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर पोकरण – 345021 (जैसलमेर) – राजस्थान

प्रायः यह देखा गया है कि गाय व भैंसों में ब्याने के बाद जेर का बाहर न निकलना अन्य पशुओं की अपेक्षा काफी ज्यादा पाया जाता है। इस अवस्था में क्षेत्र के पशुपालकों को नजदीकी पशु अस्पताल में संपर्क करना चाहिए परंतु पशु चिकित्सकों के अभाव में कभी–कभी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ जाता है। सामान्यतया ब्याने के 3 से 8 घंटे के बीच जेर बाहर निकल जाती है लेकिन कई बार 8 घंटे से अधिक समय बीतने के बाद भी जेर बाहर नहीं निकलती। कभी कभी यह भी देखा गया है कि आधी जेर टूट कर निकल जाती है तथा आधी गर्भाशय में ही रह जाती है।

जेर न निकलने के प्रमुख कारण

पशु में जेर न निकलने के अनेक कारण हो सकते हैं। जैसे संक्रामक कारणों में विब्रियोसिस, लेप्टोस्पाइरोसिस, टी.बी., फफूंदी, कई अन्य वाइरस तथा अन्य संक्रमण शामिल हैं परंतु विब्रियोसिस बीमारी में जेर न निकलने की डर सबसे अधिक होती है। असंक्रामक कारणों में असंक्रामक गर्भपात, समय से पहले प्रसव, जुड़वाँ बच्चे होना, ब्याने के बाद पशु को बहुत जल्दी गर्भित कराना, कुपोषण, हार्मोन्स का असंतुलन आदि प्रमुख हैं।

जेर अंदर रहने के पशु में लक्षण

जेर के अंदर रहने से पशु की भूख कम हो जाती है तथा दूध का उत्पादन भी गिर जाता है। गर्भाशय में जेर के रह जाने की वजह से यह सड़ने लगती है तथा योनि द्वार से बदबूदार लाल रंग का डिस्चार्ज निकलने लगता है। कभी कभी उसे बुखार भी हो जाता है। गर्भाशय में संक्रमण के कारण पशु गर्भाशय को बाहर निकालने की कोशिश करने लगता है जिससे योनि अथवा गर्भाशय तथा कई बार गुदा भी बाहर निकल आते हैं तथा बीमारी जटिल रूप ले लेती है।

सही समय पर कराएं उपचार

प्रायः पशु ब्याने के उपरांत 8 से 10 घंटे के भीतर जेर गिर जाती है। कई लोग ब्याने के 12 घंटे के बाद जेर निकालने की सलाह देते हैं जबकि अन्य 72 घण्टों तक प्रतीक्षा करने के बाद जेर हाथ से निकलवाने की राय देते हैं। यदि जेर गर्भाशय में ढीली अवस्था में पड़ी है तो उसे हाथ द्वारा बाहर निकालने में कोई हर्ज नहीं है लेकिन यदि जेर गर्भाशय से मजबूती से जुड़ी है तो इसे जबरदस्ती निकालने से रक्त स्राव होने तथा अन्य जटिल समस्यायें पैदा होने की पूरी संभावना रहती है। पशु की जेर हाथ से निकालने के बाद गर्भाशय में जीवाणुनाशक औषधि अवश्य रखनी चाहिए तथा उसे दवाइयां देने का काम पशु चिकित्सक से ही करवाना चाहिए। पशु पालक को स्वयं अथवा किसी अप्रशिक्षित व्यक्ति से यह कार्य नहीं करवाना चाहिए। ब्याने के बाद ओक्सीटोसीन अथवा प्रोस्टाग्लेंड्रिन एफ–2 एल्फा टीकों को लगाने से अधिकतर पशु जेर आसानी से गिरा देते हैं। लेकिन ये टीके पशु चिकित्सक की सलाह से ही लगवाने चाहिए। पशु को गर्भावस्था में खनिज मिश्रण तथा सन्तुलित आहार अवश्य देना चाहिए। प्रसव से कुछ दिनों पहले पशु को विटामिन ई का टीका लगवाने से इस समस्या से बचा जा सकता है।

साइलेज : व्यावसायिक पशुपालन हेतु पशु आहार

राजेश कुमार मीना, फूलसिंह हिण्डोरिया, राकेश कुमार, हरदेव राम, दिनेश कुमार एवं शुभ्रदीप भट्टाचार्य

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद– राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा) –132 001

नवीनतम प्रशिक्षण, नई तकनीक और अनुसंधान कार्यों ने पशुपालन व्यवसाय को एक उन्नत और सफल व्यवसाय की श्रेणी में खड़ा करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जिसका प्रत्यक्ष परिणाम हमारे देश के वर्तमान दूध उत्पादन एवं दूध उपयोग के आंकड़े से लगाया जा सकता है। वर्तमान में हमारे देश में लगभग 198 मिलियन टन दूध का उत्पादन हो रहा है जो 1950 के समय से लगभग 1050 गुना कीर्तिमान बढ़ोतरी के रूप में दर्ज हुआ है। आज हमारा देश विश्व में प्रति व्यक्ति औसतन दूध उपभोग के आंकड़े में गौरवपूर्ण एवं गरिमामय स्थिति पर पहुंच चुका हैं जिससे देश के लाखों बच्चों को कुपोषण से मुक्ति मिली है जो कि हर भारतीय के लिए गौरवान्वित होने का विषय है। लेकिन यह भी सच है कि प्रति पशु दुग्ध उत्पादन की दर, विश्व के प्रति पशु औसत के लगभग आधे से भी कम है। जिसके पीछे कई कारण हैं उनमें से एक मुख्य कारण सालभर पौष्टिक चारे की कमी एवं असंतुलित आहार है। देश में लगभग 35: हरा चारा, 10: सूखा चारा और 44: दाना राशन की कमी दर्ज की गई है। इसके साथ ही वर्ष के नवम्बर – दिसंबर एवं अप्रैल–जून के महीने में हरे चारे की गंभीर समस्या होती है जिससे पशुओं के स्वास्थ्य और दुग्ध उत्पादन की क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसलिए इस समस्या से निजात दिलाने के लिए वैज्ञानिकों ने एक तकनीक विकसित की है जिसे साइलेज कहा जाता है। इसके अंतर्गत खरीफ और रबी के मौसम में अतिरिक्त उत्पादित हरे चारे को आचार की तरह सरंक्षित किया जा सकता है। जो पूर्णतः हरे चारे के समान होता है और उसमें उपस्थित सभी पोषक तत्व लगभग पूर्व अनुपात में विद्यमान रहते हैं। साथ ही पशुओं के लिए सालभर संतुलित आहार की उपलब्धता बनी रहती है। इसलिये मुख्यतः जो किसान भाई महानगर से जुड़े क्षेत्र में व्यवसायिक स्तर पर पशुपालन करते हैं उनके लिए सालभर संतुलित आहार हेतु साइलेज एक बेहतर विकल्प हो सकता है।

साइलेज को पशुपालन व्यवसाय में किफायती एवं गुणवत्तापूर्ण आहार प्रबंधन हेतु एक संजीवनी के तौर पर देखा जा सकता है। जिससे हरे चारे की उपलब्धता वर्ष भर बनी रहती है। सामान्य तौर पर पशुपालन पर आने वाली कुल लागत का लगभग 60–70: भाग आहार प्रबंधन ही होता है। चूंकि, हरा चारा संतुलित आहार का सबसे

किफायती स्रोत पाया गया है, इसलिए पशुपालन व्यवसाय की लागत को कम करने एवं चारे की उपलब्धता बनाये रखने के लिए अतिरिक्त हरे चारे को साइलेज तकनीक से बहुत ही कम लागत में सरंक्षित कर बाद में उपयोग में लाया जा सकता है। और यह पहल किसानों की आय बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण विकल्प के तौर पर देखी जा सकती है। इस तकनीक का मुख्य उद्देश्य हरे चारे की अधिकता के समय इसे उपयुक्त तरीके से सरंक्षित कर चारे की आवश्यकता को खपत अनुरूप पूरा करना, हरे चारे को कम से कम पोषक तत्वों की क्षरण स्थिति पर सरंक्षित करना, वर्तमान में चारे की उपलब्धता को भविष्य के लिए समायोजित करना एवं चारे को आसानी से लम्बी दूरी तक परिवहन करना है।

साइलेज क्या है

साइलेज हरे चारे को सरंक्षित करने की एक उपयोगी तकनीक है जो मुख्यतया आचार के सिद्धांत पर कार्य करती है। इसके अंतर्गत हरे चारे को वायु रहित अवस्था में सरंक्षित किया जाता है और अम्लीय प्रकृति उत्पन्न की जाती है। फलस्वरूप निम्न पी. एच. अर्थात अम्लीय अवस्था पर हानिकारक जीवाणु उत्पन्न नहीं हो पाते हैं और चारे की गुणवत्ता पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। इस तकनीकी से हरे चारे को लम्बे समय तक बिना ख़राब हुए उपयोग किया जा सकता है। उत्कृष्ट गुणों की साइलेज बनाने के लिए धान्य फसलें जैसे– मक्का, ज्वार, बाजरा, नेपियर एवं सुगरग्रेज़ उत्तम मानी जाती है। इसके लिए सामान्यतः 6–7: घुलनशील शर्करा अर्थात कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक और प्रोटीन की कम मात्रा वाली फसलों का चयन किया जाता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में साइलेज की आवश्यकता

पशुपालन व्यवसाय की सफलता में साइलेज एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में उभरा है। जिससे हर रोज हरे चारे की कटाई पर होने वाले श्रमिक खर्च और समय की बचत होती है। साथ ही साइलेज से बने हुए चारे में पोषक तत्वों की पाचनशीलता भी अधिक देखी गई है। इससे पशुओं को अधिक ऊर्जा मिलती है फलस्वरूप पशु अधिक स्वस्थ और तनाव मुक्त रहते हैं जिससे उनकी उत्पादन क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव देखा गया है। साइलेज उपयोग लेने वाले पशुपालक अपने पशुओं के लिए सालभर की आहार प्रणाली का भी सुलभता से प्रबंधन कर सकते हैं।

हरे चारे में विटामिन्स और खनिज तत्वों की मात्रा अधिक होती है, जो पशुओं की प्रजनन शक्ति को बढ़ाने में सहायक होता है। हरा चारा खिलाने से पशुओं की दुग्ध उत्पादकता में बढ़ोतरी होती है, साथ ही उनके आहार प्रबंधन में खर्च भी कम होता है। इसलिए पशुओं को वर्ष भर हरा चारा खिलाना डेरी व्यवसाय की सफलता और मुनाफे के लिए मुख्य घटक की भूमिका अदा करता है। लेकिन खाद्य फसलों के दबाव, प्राकृतिक संसाधनों के अभाव और अनुचित फसल प्रणाली के कारण उत्तरी और मध्य भारत में वर्ष में दो बार हरे चारे की कमी का सामना करना पड़ता है। सामान्यतः यह कमी मानसून शुरू होने से पूर्व मई–जून तथा मानसून समाप्त होने के बाद अक्टूबर–दिसंबर के दौरान देखी जाती है। दूसरी ओर अगस्त से सितंबर एवं फरवरी से अप्रैल महीनों के दौरान हरे चारे की पैदावार बहुतायत में होती है जिसके कारण बहुत सारा चारा सरंक्षण के अभाव में बर्बाद हो जाता है। अगर इस अवसर को उचित तकनीक जैसे साइलेज और 'हे' आदि से सरंक्षित किया जाये तो हमारे देश की वृहद पशु संख्या की आहार सुरक्षा और पोषण सुरक्षा के लिए यह मील का पत्थर साबित को सकता है। परन्तु सामान्यतौर पर देखा गया है की साइलेज बनाने की उचित तकनीक और विधि के बारे में जागरूकता का अभाव और कम रूचि होने के कारण हरे चारे के संकट के समय अधिकतर पशुपालक केवल भूंसा या पुआल पर निर्भर करते हैं जो साइलेज की तुलना में कम पौष्टिक होता है। क्योंकि भूंसा और पुआल दोनों में प्रोटीन, खनिज तत्व, विटामिन एवं कार्बोहाइड्रेट की मात्रा बहुत कम पायी जाती है, परिणामस्वरूप पशुओं के स्वास्थ्य, दुग्ध उत्पादन और प्रजनन क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

पशुओं को साइलेज खिलाने के लाभ

- हरे चारे के संकट के समय साइलेज को एक वैकल्पिक विकल्प के रूप में उपयोग कर पशुओं के लिए संतुलित आहार की पूर्ति की जा सकती है।

- साइलेज के द्वारा हरे चारे की गुणवत्ता को लम्बे समय तक संरक्षित रखा जा सकता है तथा यह हरे चारे के समान पौष्टिक तथा सुपाच्य होता है।
- साइलेज, दाना राशन और अन्य खाद्य विकल्पों की तुलना में किफायती पाया गया है।
- साइलेज बनाने और सरंक्षित करने के लिए तुलनात्मक रूप से कम स्थान की आवश्यकता होती है और इसको किसी भी मौसम में बनाया जा सकता है।
- साइलेज अम्लीय प्रकृति का होने के कारण इसे लम्बे समय तक हानिकारक सूक्ष्मजीवों से सुरक्षित रखा जा सकता है तथा साइलेज में किसी तरह की कोई विषाक्तता नहीं पाई जाती है।
- साइलेज बनाने से चारा फसल की हर रोज कटाई पर आने वाले श्रमिक खर्च और समय दोनों की बचत होती है।
- इसे हरे चारे के संकट के समय दुधारू पशुओं को खिलाकर अधिक और नियमित दूध उत्पादन लिया जा सकता है।
- आसानी से लम्बी दूरी वाले स्थानों से लाया और ले जाया जा सकता है।
- साइलेज बनाने से खरीफ की फसल को समय पर काटकर रबी वाली फसल को समय पर बोया जा सकता है।

साइलेज हेतु फसलों का चुनाव और विशेषताएं

उचित फसल के चयन से ही उत्तम साइलेज बनाया जा सकता है। साइलेज बनाने के लिए चारा फसलों में कम से कम 6–7 प्रतिशत या अधिक घुलनशील शर्करा की मात्रा उपस्थित हो एवं प्रोटीन की मात्रा तुलनात्मक रूप से कम होनी चाहिए। कार्बोहाइड्रेट की अधिकता से किण्वन क्रिया तीव्र होती है। विशेष रूप मोटे तने वाली फसलें जैसे मक्का, ज्वार, शुगरग्रेज, बाजरा, जई एवं नेपियर संकर घास उपयुक्त होती है।

साइलेज बनाने हेतु फसल कटाई की उपयुक्त अवस्था

गुणवत्तापूर्ण साइलेज बनाने के लिए दाने वाली फसलों जैसे मक्का, ज्वार, जई आदि को दाने की दूधिया अवस्था में काटना चाहिए। इस समय चारे में 60–70 प्रतिशत पानी रहता है। अगर पानी की मात्रा अधिक है तो चारे को थोडा समय धुप में सुखाा लेना चाहिए। गुणवत्तापूर्ण साइलेज बनाने के लिए चारे में कम से कम चारे में 30 प्रतिशत शुष्क भार होना चाहिए।

साईलेज के गड्ढे (पिट) के लिए स्थान का चयन

- गड्ढे हमेशा जमीन के स्तर से ऊंचे स्थान पर बनाने चाहिए जहां से वर्षा के पानी का निकास अच्छी तरह हो सके।
- भूमि में पानी का स्तर नीचे हो।

गुणवत्तापूर्ण साइलेज हेतु चारा फसलों की विशेषताएं एवं कटाई की उपयुक्त अवस्था

क्रम संख्या	चारा फसलें	जलीय घुलनशील कार्बोहाइड्रेट	कटाई की अवस्था	बुवाई से कटाई के बीच का समय (दिन)
1	मक्का	20–22	50 प्रतिशत फूल आने से दुग्ध अवस्था तक	55–80
2	ज्वार	8–12	50 प्रतिशत फूल आने से दुग्ध अवस्था तक	65–85
3	बाजरा	7–10	50 प्रतिशत फूल आने से दुग्ध अवस्था तक	50–55
4	जई	12–16	बूट से दुग्ध अवस्था तक	110–120
5	नेपियर बाजरा	4–8	एक मीटर की ऊंचाई होने पर	60–उपरांत

ड्रम साइलो

बेल साइलो

- साईलेज बनाने का स्थान पशुशाला के नजदीक होना चाहिए।

साइलो

जिस पिट (गड्ढा) या स्थान का उपयोग साइलेज बनाने के लिए किया जाता है। उसे साइलो कहा जाता है। साइलो कई प्रकार के होते है जैसे कच्चा साइलो, बंकर साइलो, टावर साइलो, पावर

पशुओं की संख्या के आधार पर अपेक्षित साइलेज के लिए पिट साइलो का मापन

पशु संख्या	पिट का आयतन (ऊंचाई×चौड़ाई× लम्बाई) फ़ीट में	अपेक्षित साइलेज की मात्रा (टन) प्रति दो माह के लिए
2	4×5×7	2.4
3	4×5×10	3.6
5	4×5×16	6.0
10	4×8×20	12.0
15	4×10×34	18.0
25	5×10×34	30.0

हॉउस साइलो, पिट साइलो, एवं बैग या ड्रम साइलो। वर्तमान में बैग या ड्रम साइलो का उपयोग अधिक किया जा रहा है। क्यों इनके अंदर चारे को आसानी से सघनता (हवा मुक्त) के साथ भरा जा सकता है जिससे अवायवीय स्थिति को पूरी तरह नियंत्रित कर सकते हैं और इस विधि द्वारा कम पशुओं के लिए भी गुणवत्तापूर्ण साइलेज बनाया जा सकता है। साथ ही साथ साइलो को खोलते समय चारे का कम भाग वातावरण के संपर्क में आता है जिससे उसके ख़राब होने के अवसर भी कम रहते है।

बेल साइलो

यह साइलेज बनाने का एक आधुनिक तरीका है। इसमें गट्ठा तैयार करने वाली मशीन (बेलर कम रैपर) की सहायता से हरे चारे को खेत में ही काटकर इसके गट्ठा बनाकर इस पर पॉलिथीन को कसकर लपेट दिया जाता है। जिससे चारे के दूषित होने का भी डर नहीं रहता और बंडल को अच्छे से हवा मुक्त रख सकते है। इसको एक स्थान से दूसरे स्थान तक परिवहन करना बहुत भी सुलभ होता है।

साइलेज बनाने की विधि

साईलेज बनाने के लिए हरे चारे को मशीन की सहायता से

छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर थोडी देर के लिए खेत में सुखाने के लिए छोड़ दिया जाता हैं ताकि उसमें नमी की मात्रा लगभग 70 प्रतिशत या उस से कम रह जाये। चारे की कटाई इस प्रकार से करनी चाहिए ताकि उसके लगभग 60–65 प्रतिशत भाग 1–2 सेमी. और 35–40 प्रतिशत भाग 2.5–3.0 सेमी. आकार के हों जिससे गड्ढों में अच्छी तरह दबाकर भरा जा सके और वायुरहित किया जा सके। शुरू में जमीन के तल में कुछ घास फूंस या सूखा चारा बिछा दें ताकि चारे में मिट्टी नहीं मिल सके। साइलो का आकर बड़ा होने पर उसे ट्रैक्टर चलाकर दबाया जा सकता है। जब तक जमीन की स्तर से लगभग एक मीटर ऊंचा ढेर न लग जाये तब तक हरे चारे को परतों में भरते रहना चाहिए। भराई के बाद साइलो के मुँह को ऊपर से गुम्बदाकार बना दें और पोलिथीन या सूखे घास से ढक कर मिट्टी अच्छी तरह दबा दें और ऊपर से मिट्टी और गोबर से लिपाई कर दें ताकि इसमें बाहर से हवा पानी प्रवेश नहीं कर पाए। जितना संभव हो सके पिट या गड्ढे को एक ही दिन में भरना चाहिए। जिससे की

गड्ढे को पूरी तरह से हवा रहित किया जा सके। साइलो की भराई हमेशा शुष्क दिनों में करनी चाहिए। इसके 45–60 दिन बाद साइलेज बनकर पशुओं को खिलाने के लिए उपयुक्त हो जाती है।

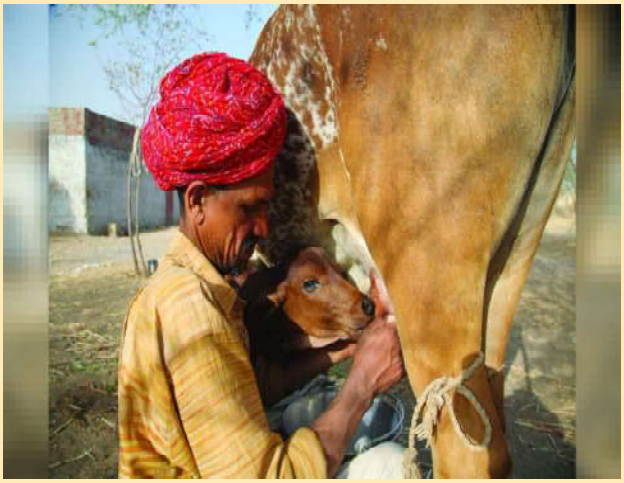

साइलो खोलने की विधि

साइलेज तैयार होने पर इसको हमेशा एक साइड से एक कोने पर खोलना चाहिए। जिससे वायु कम से कम अंदर प्रवेश करे। जरुरत के अनुसार साइलेज निकालकर इसे तुरंत ढक देना चाहिए। जिससे लम्बे समय तक इसकी गुणवत्ता को बनाये रखा जा सकता है।

शुरुआत में पशुओं को इसकी आदत नहीं होने पर इसकी थोड़ी मात्रा लगभग 5–10 किलोग्राम प्रति पशु हरे चारे के साथ मिलाकर एक सप्ताह तक खिलाना चाहिए। इसके बाद मात्रा को धीरे –धीरे बढ़ाकर 20–25 किलोग्राम तक किया जा सकता है।

निष्कर्ष

महानगरों एवं हरे चारे के अभावयुक्त क्षेत्रों में डेरी व्यवसाय को लाभदायक बनाना लगातार चुनौती का विषय बना हुआ है। क्योंकि इस व्यवसाय में लगभग 60–70 प्रतिशत लागत केवल पशुओं के आहार प्रबंधन में आती है जो हरे चारे के अभाव में कई गुना बढ़ जाती है। हरा चारा पोषण का सबसे उत्तम एवं किफायती घटक माना जाता है और साइलेज इस परिदृश्य में मील का पत्थर साबित हो सकता है। क्योंकि साइलेज की पोषक गुणवत्ता लगभग हरे चारे के समान होती है इसलिए पशुपालन व्यवसाय हेतु सालभर पौष्टिक आहार के लिए साइलेज एक संतुलित, आसान और सस्ता विकल्प हो सकता है जिससे डेरी पशुपालक कम निवेश में अधिक लाभ अर्जित कर सकते हैं।

नीली कांति में नई लहर : बायोफ्लॉक मत्स्य पालन

डॉ. एस. सासमल एवं डॉ. गौमत राय

कृषि विज्ञान केन्द्र, रायपुर
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)

पक्के टैंकों में लाभदायक जीवाणुओं द्वारा मछलियों के अपशिष्ट को प्रोटीन में परिवर्तित कर जल के वातावरण को मछलियों के लिये उपयुक्त बनाते हुए तथा मछलियों हेतु भोज्य पदार्थ में रूपांतरित कर, कम लागत, कम पानी एवं सीमित जगह में अधिक उत्पादन लेने की पद्धति को बायोफ्लॉक तकनीक कहते हैं।

बायोफ्लॉक पद्धति के फायदे

1. कम लागत, सीमित जगह एवं अधिक उत्पादन।
2. अतिसीमित पानी का उपयोग।
3. अतिसीमित श्रमिक लागत एवं चोरी के भय से मुक्ति।

आवश्यक संसाधन : सीमेंट टैंक/तारपोलिन टैंक, एइरेशन सिस्टम, विद्युत उपलब्धता, प्रोबायोटिक, मत्स्य बीज, मछली दाना एवं जल गुणवत्ता मापक किट इत्यादि।

उत्पाद योग्य मछली प्रजातियां : पंगास, तिलापिया एवं कॉमन कार्प इत्यादि तथा अधिक मूल्य के मछली जैसे देशी मांगुर, सिंधी, कोई, टेंगना एवं पब्दा।

बायोफ्लॉक पद्धति : इस पद्धति में 10 हजार लीटर से 50 हजार लीटर तक सीमेंटेड या तारपोलिन टैंकों को उपयोग में लिया जाता है। व्यावसायिक मछली पालन हेतु 20 से 30 हजार लीटर क्षमता वाले टैंक को सर्वोतम माना जाता है। इस पद्धति में पहले टैंकों के पानी में प्रोबायोटिक को एक्टिव करके डाला जाता है, उसके 7 से 8 दिन पश्चात् मछली बीजों का संचयन किया जाता है। संचयन हेतु अंगुलिकाई मत्स्य बीज उत्तम होती है, दाना के रूप में बाजार में उपलब्ध फ्लोटिंग फीड उपयोग में लाया जाता है। मछली दाना 3 से 5 प्रतिशत मछली के भार के अनुसार दिया जाता है। 6 से 7 माह में विक्रय योग्य मछली उत्पादन हो जाता है। इस दौरान निरतंर पानी की गुणवत्ता जैसे पानी का पी.एच., अमोनिया, नाइट्राईट लेवेल घुलित आक्सीजन, फ्लॉक की मात्रा आदि की जांच करनी चाहिए। 10 हजार लीटर क्षमता वाली टैंक से 2 से 2.50 क्विंटल तक मछली का उत्पादन लिया जा रहा है।

आर्थिक लाभ : इस पद्धति से 10 हजार लीटर क्षमता के टैंक (एक बार की लागत रू 32 हजार, पांच वर्ष हेतु) से लगभग सात माह (पालन लागत रू 24 हजार) में विक्रय योग्य 2 से 2.50 क्विंटल मछली (मूल्य 40 हजार) का उत्पादन कर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। इस तरह वार्षिक शुद्ध लाभ रू 25 हजार एक टैंक से प्राप्त किया जा सकता है। यदि महंगी मछलियों का उत्पादन किया जाये तो यह लाभ 4–5 गुणा अधिक होगा।

प्रशिक्षण हेतु संपर्क : मध्य भारत में एक मात्र सरकारी संस्थान–कृषि विज्ञान केन्द्र, रायपुर इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़) द्वारा बायोफ्लॉक पद्धति से मछली उत्पादन पर कृषकों, नवयुवकों, महिला समूहों एवं कृषि के स्नातक छात्रों को विगत 2 वर्षो से प्रशिक्षण दिये जा रहे हैं। इन दो वर्षो में सम्पन्न 13 प्रशिक्षणों में भारत के विभिन्न राज्यों एवं विदेश से कुल 520 प्रशिक्षणार्थियों की सक्रिय भागीदारी रही है। इस दौरान छत्तीसगढ़ से लगभग 270 प्रतिभागियों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है जिनमें से 73 प्रशिक्षणार्थियों ने बायोफ्लॉक मत्स्य पालन पद्धति को अपना कर लाभ प्राप्त किया है। प्रदेश के अन्य कृषि विज्ञान केन्द्रों में भी इस तकनीक का विस्तार किया जा रहा है जिससे उन केन्द्रों में भी प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सके।

Regd. No. 14249/57/RNI

प्रकाशन एकक, कृषि सूचना इकाई, विस्तार निदेशालय, कृषि विस्तार सदन, पूसा, नई दिल्ली – 110012